ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 22 फरवरी 2026

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार, 22 फरवरी 2026 से 28 फरवरी 2026

माघ कृ. 13 ● वि० सं०-2082 ● वर्ष 67, अंक 08, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 201 ● सृष्टि-संवत् 1,96,08,53,126 ● पृ.सं. 1-12 ● मूल्य - 5/- रू. ● वार्षिक शु. 300/- रू.

महर्षि दयानन्द जन्म भूमि टंकारा में ऋषि बोधोत्सव सफलतापूर्वक सम्पन्न

ऋषि जन्म भूमि टंकारा में ऋषि बोधोत्सव पद्मश्री डॉ. पूनम सूरी जी की अध्यक्षता में उत्साहपूर्वक सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम में लगभग 2000 आर्यजनों ने सम्मिलित होकर कार्यक्रम की शोभा को बढ़ाया जिसमें अधिकतर स्थानीय लोग ही थे।

इस ऋषि बोधोत्सव को आर्य सन्देश टी.वी. चैनल एवं अन्य 20 चैनलों के माध्यम से पूरे विश्व में देखा गया। तकनीकी व्यवस्थाओं से पता लगा है कि दिनांक 15–02–2026 के कार्यक्रमों को कुल मिलाकर लगभग 90,000 ऋषि भक्तों ने देखा। उनमें बहुत से अतिवृद्ध थे जो अभी तक टंकारा नहीं गए थे

और टंकारा जाने का उनका स्वप्न पूरा नहीं हो रहा था। कुछ महानुभाव ऐसे भी थे जो सीबीएसई की परीक्षा प्रारम्भ होने के कारण टंकारा नहीं जा सके थे। सभी ने इस कार्यक्रम की बहुत प्रशंसा की।

यजुर्वेद पारायण यज्ञ 09 फरवरी 2026 से टंकारा स्थित उपदेशक विद्यालय के आचार्य रामदेव जी के ब्रह्मत्व में प्रारम्भ हुआ। 13 फरवरी से 15 फरवरी तक प्रातः 6 बजे से टंकारा में पधारे आर्यजनों एवं स्थानीय ऋषि भक्तों द्वारा प्रभात फेरी निकाली गई। 13, 14, 15 फरवरी 2026 को योग एवं स्वास्थ्य सत्र का आयोजन स्वामी शान्तानन्द जी के नेतृत्व में बृजमोहन मुंजाल योग साधाना केन्द्र में प्रातः 5 बजे से हुआ जिसमें टंकारा में पधारे हुए आर्यजनों ने सम्मिलित होकर लाभ लिया।

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

डी.ए.वी. कोटा में यज्ञ करके मनाया महर्षि दयानन्द जन्मोत्सव

डी.ए.वी. कोटा में महर्षि दयानन्द सरस्वती का 202वाँ जन्मदिवस यज्ञशाला में यज्ञ करके मनाया गया।

यज्ञोपरान्त अपने उद्बोधन में प्राचार्या श्रीमती पल्लवी अरोडा ने कहा कि महर्षि दयानन्द ने सम्पूर्ण मानव अध्ययन–अध्यापन संभव हो सका, आर्य समाज की स्थापना कर 10 नियमों के माध्यम से जीवन में सत्याचरण पर बल दिया, सत्यार्थ प्रकाश जैसा महान ग्रन्थ रचकर विद्या–अविद्या का सही स्वरूप बताया।

मुख्य यजमान डॉ वेदप्रकाश गुप्ता

जाति के लिए जो समाजोपयोगी कार्य किए वे हम सबके लिए आज भी उतने ही अनुकरणीय हैं।

विद्यालय के धर्मशिक्षक आचार्य शोभाराम ने कहा कि महर्षि दयानन्द एक क्रान्तिकारी संन्यासी थे। दयानन्दजी के प्रयासों से ही देश में पुनः वेदों का ने कहा कि मुझे इन छोटे–छोटे बच्चों को मंत्रपाठ करते हुए देखकर बहुत खुशी हो रही है। निश्चय ही डी.ए.वी. में पढने वाले बच्चे अधिक संस्कारी होते हैं।

शान्तिपाठ एवं प्रसाद वितरण के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

बोर्ड परीक्षार्थियों हेतु शुभाशीष यज्ञ का आयोजन

डी.ए.वी. मॉडल स्कूल, सेक्टर–15 ए, चण्डीगढ़ में आर्य युवा समाज द्वारा बोर्ड परीक्षाओं में बैठने जा रहे कक्षा दसवीं एवं बारहवीं के विद्यार्थियों के उत्कृष्ट परीक्षा परिणाम की मंगलकामना उपस्थित रहे तथा सभी ने विद्यार्थियों की सफलता के लिए सामूहिक प्रार्थना की।

प्राचार्या श्रीमती अनुजा शर्मा ने विद्यार्थियों को जीवन में अनुशासन, सकारात्मक सोच और सतत परिश्रम

हेतु 'शुभाशीष–यज्ञ' का आयोजन किया गया।

यज्ञ में प्राचार्या श्रीमती अनुजा शर्मा जी ने यजमान के रूप में सहभागिता निभाई। धर्माचार्य आचार्य रमेश शास्त्री द्वारा वैदिक विधि–विधान से यज्ञ कर्म सम्पन्न कराया गया। अध्यापक एवं अध्यापिकाएँ श्रद्धा एवं एकाग्रता के साथ के महत्व को रेखांकित किया और अनुशासित जीवन न केवल परीक्षा में सफलता का आधार बनता है।

विद्यार्थियों को जलाभिषेक द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया गया।

शांति पाठ एवं प्रसाद वितरण के साथ यह आध्यात्मिक एवं प्रेरणादायी कार्यक्रम सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। स. प्र. समु. १

{संपादक – पूनम सूरी}

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 22 फरवरी 2026 से 28 फरवरी 2026

हम तेरे सम्मुख मूढ़ हैं

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

मूरा अमूर न वयं चिकित्वो, महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से।
शये वव्रिश्चरति चिह्वयाऽदन्, रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन्।।

ऋग् १०.४.४

ऋषिः **त्रितः आप्त्यः**। देवता **अग्निः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● (**अङ्ग**) हे, (**अमूर**) अमूढ़, (**चिकित्वः**) ज्ञानी, (**अग्ने**) परमेश्वर!, (**मूराः**) मूढ़, (**वयं**) हम, (**महित्वं**) महत्ता को, (**न**) नहीं [जान पाते]।, (**त्वं**) तू, (**वित्से**) जानता है। [हमारा], (**वव्रिः**) रूपवान् आत्मा, (**शये**) सोया पड़ा है, (**जिह्वया**) जिह्वा [आदि इन्द्रियों] से, (**अदन्**) भोग करता हुआ, (**चरति**) विचरता है, (**विश्पतिः सन्**) राजा होता हुआ [भी], (**युवतिं**) प्रकृति–रूप युवति को, (**रेरिह्यते**) अतिशय पुनः–पुनः चाट रहा है।

● हे अग्ने! हे तेजोमय ज्ञानी प्रभु! हम मूढ़ हैं, तुम अमूढ़ हो। हम तो यह भी नहीं जानते कि 'महत्ता' किसका नाम है, महत्त्व प्राप्त करना किसे कहते हैं। हम तो समझते हैं कि सांसारिक दृष्टि से महिमाशाली होना, हाथी, घोड़े, रथ, सेवक आदि का स्वामी हो जाना ही महत्ता है। हमारा तो विचार है कि नचिकेता को यम ने जिस सांसारिक धन–दौलत, पुत्र–पौत्र, भूमि के राज्य आदि सम्पत्ति के प्रलोभन में फँसाना चाहा था, उस सम्पत्ति को पा लेना ही महत्ता है। पर हम मूढ़ अज्ञानियों के ऊपर रहनेवाले अमूढ़ ज्ञानी तुम जानते हो कि सच्ची 'महत्ता' क्या है।

हमारा रूपवान् आत्मा सोया पड़ा है, उसे यही चेतना नहीं है कि मैं किसलिए इस शरीर में आया हूँ, मेरा लक्ष्य क्या है मुझे किधर जाना है। वह जिह्वा आदि इन्द्रियों से निरन्तर भोगों को भोगने में आसक्त हुआ विचर रहा है और इस भोग भोगने में ही अपने जीवन की इतिश्री मान बैठा है। भगवान् ने उसे 'विश्पति' बनाया है, शरीर–नगरी का राजा बनाया हैं, जिसमें मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रियाँ आदि अनेक प्रजाएँ निवास करती हैं। उसे इस शरीर–नगरी को ईश्वरीय साम्राज्य बनाना चाहिए था, अध्यात्म–साधना द्वारा आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत राष्ट्र बनाना चाहिए था। शरीर–राष्ट्र को भोगों से जर्जर न कर सबल, सप्राण और समनस्क करना चाहिए था। पर धिक्कार है इस आत्मा को! यह तो एक 'युवति' को चाट रहा है, अतिशय पुनः–पुनः चाट रहा है। प्रकृति ही यह युवति है जो नटी बनकर आत्मा को अपने साथ नचा रही है, भोग भुगा रही है। आत्मा प्रकृति को चाट रहा है, प्रकृति आत्मा को चाट रही है। इस प्रकार आत्मा लौकिक भोग–विलासों में आनन्द ले रहा है।

हे मेरे आत्मन्! इस मूढ़ता को त्यागो, अपने अन्दर ज्ञान की ज्योति जगाओ, 'सच्ची महत्ता क्या है' इसे जानो, सोते से उठ खड़े हो, इन्द्रियों के वशीवर्ती न हो, अपितु इन्द्रियों के स्वामी बनो। प्रकृति को न चाटकर परम प्रभु के अमृत–रस का आस्वादन करो। तुम्हारा उद्धार होगा, तुम महिमाशाली बन जाओगे।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

प्रभु–भक्ति

● **महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती**

प्रभु भक्ति पुस्तक में स्वामी जी ने शरीर व आत्मा का चिर–परिचित सम्बन्ध दर्शाया है। शरीर एक मन्दिर है आत्मा उसमें बैठा साधक है जो अपने शुभ कर्मों से मोक्ष को प्राप्त कर सकता है अर्थात् साधक शरीर है, साध्य परमात्मा का साक्षात्कार है। शरीर की बनावट इस साध्य को प्राप्त करने के अनुकूल है। मानव शरीर से ही आत्मा कैवल्य को प्राप्त कर सकती है। हृदय कमल का मन्दिर ही वह स्थान है जहाँ आत्मा–परमात्मा का मिलन होता है।

इसी शरीर में आठ चक्र (मूलाधार आदि) व नौ द्वार (नेत्र आदि) हैं इनका सदुपयोग ही मानव जीवन के परमलक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ है। इस शरीर रूपी मन्दिर की स्वच्छता रखनी चाहिए, पवित्र हृदय से प्रभु–भक्ति करनी चाहिए। शरीर को निरोग व स्वस्थ रखने के लिए खान–पान आचरण आदि पर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

इन्हीं विषयों पर गम्भीरता से स्वामी जी विचार कर रहे हैं।

.... अब आगे

नाड़ी–शुद्धि–

पेट की शुद्धि के पश्चात् नाड़ी–शुद्धि की बारी आती है और इसके लिए नाना प्रकार के प्राणायाम बताये गए हैं। भस्त्रा {**जिस प्रकार धौंकनी में वायु भरी और निकाली जाती है, उसी प्रकार भस्त्रा होता है। नासिकाओं के द्वारा पहले शनैः–शनैः और फिर तेज़ी के साथ जल्दी–जल्दी श्वास लिये जाते हैं। एक समय में दस मिनट से अधिक भस्त्रा नहीं करना चाहिए और केवल ऐसे स्थान पर बैठकर भस्त्रा का अभ्यास करना चाहिए, जहाँ की वायु शुद्ध हो और गर्मी अधिक न हो।**} प्राणायाम से नाड़ियों के मल नाश होते हैं।

रेचक, कुम्भक, पूरक से धारणा–शक्ति बढ़ती है और छोटी–छोटी तथा अति सूक्ष्म नाड़ियों के दोष दूर होते हैं, परन्तु आरम्भ करने से पूर्व इनकी विधि सीख लेनी चाहिए। हाँ, इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्राणायाम सीखते–सीखते कहीं किसी दम्भी के जाल में न फँस जाएँ। आजकल योग–विद्या के नाम पर काफी ठगी हो रही है और सभ्य समाज में भी कुछ ऐसे लोग घुस आए हैं, जिन्होंने कितने ही प्रभु–प्रेमियों को सदा का रोगी–सा बना दिया है। ये लोग हठयोग के ऐसे प्रयोग करते हैं जिनसे भगवान् के इस मन्दिर का सत्यानाश हो जाता है। अतएव उनसे बचना चाहिए और यह समझ लेना चाहिए कि भगवान् के मन्दिर की सफाई का अर्थ यह नहीं कि मन्दिर ही को गिरा दिया जाए। 'योग–दर्शन' के साधनपाद में लिखा है–"जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोतर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता है।" इसी प्रकार भगवान् मनु ने भी लिखा है कि–"जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध होता है, वैसे ही प्राणायाम से इन्द्रियों के सब दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं।"

मन की शुद्धि–

नाड़ी–शुद्धि के अतिरिक्त मन की शुद्धि भी आवश्यक है। उपनिषद् में बताया है कि मन अन्न से बनता है। वैसे तो सारा शरीर ही अन्न से बनता है, परन्तु शरीर अन्न के स्थूल भाग से बनता है और मन सूक्ष्म भाग से। जिस भावना अथवा जिस साधन से अन्न कमाया जाएगा, उसका सूक्ष्म प्रभाव मन पर अवश्य पड़ेगा। यदि अन्न कमाने में झूठ, दम्भ, मक्कारी या पर–पीड़ा को काम में लाया गया है तो उस अन्न के खानेवाले के मन पर वैसा ही प्रभाव पड़ेगा। यह प्रभाव शीघ्र ज्ञात हो या न हो, परन्तु किसी–न–किसी समय यह प्रभाव जाग्रत होकर मनुष्य को वैसे ही कर्म करने पर बाधित कर देता है, यह निश्चित बात है। वह खोटे अन्न का ही तो प्रभाव था जिसने भीष्म–पितामह जैसे व्रतधारी बाल–ब्रह्मचारी को विवश कर दिया कि वह सत्य और न्याय का पक्ष छोड़कर अत्याचारी दुर्योधन का साथ दे। भीष्म पितामह ने स्वयं महाभारत में अन्न के इस प्रभाव को माना है इसलिए मन की शुद्धि के लिए सबसे पहली आवश्यक बात यह है कि हमारा अन्न शुद्ध हो, यह धर्म तथा अपने बाहुबल से कमाया गया हो। इसके साथ अन्न ऐसा खाया जाए जो विकार पैदा करनेवाला न हो, तामसिक न हो। जो लोग लाल

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

आर्यो ! आओ मूल को समझें

● भद्रसेन

आर्य समाज की स्थापना महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 1875 में की थी। आर्य समाज एक प्रचारात्मक संगठन है अतः प्रचार के लिए वह दैनिक, साप्ताहिक सत्संग, वार्षिक उत्सव, वेद सप्ताह, विविध पर्वो का आयोजन तथा केन्द्रीय और प्रान्तीय स्तर पर भिन्न–भिन्न समयों में आर्य महासम्मेलन करता रहता है। ऐसी स्थिति में एक स्वाभाविक सी जिज्ञासा होती है कि आर्य समाज की विचारधारा की मूल भावना, मूल मन्तव्य, केन्द्र बिन्दु क्या है? जिसका कि आर्यसमाज प्रचार–प्रसार करना चाहता है। इस दृष्टि से जब हम गहरे पानी बैठते हैं, तो हमारे सामने स्पष्ट होता है, कि यह सारा स्वारस्य इसके नाम में निहित है।

यह एक स्वाभाविक सी बात है कि समझदार जब भी जो भी, जैसा भी कुछ करना चाहता है वह अपने हित की भावना से या अपने भले की दृष्टि से करता है इसीलिए वेद के रचयिता प्रभु ने वेद पढ़ने वालों को और इस संसार में प्रगति की चाहना करने वालों को आर्य शब्द से यत्र–तत्र पुकारा है।

आर्यो ! यह आर्य शब्द बहुत ही महत्वपूर्ण है। आर्य शब्द केवल हमारा सामूहिक नाम ही नहीं, अपितु हमारे अर्थात् हर एक के लक्ष्य, उसकी सिद्धि की प्रक्रिया, तड़प, भावना, चाहना का भी निर्देश करता है। हाँ, यह ध्यान रहे यह सब तभी चरितार्थ होगा, जब इसके साथ समाज अर्थात् इसकी सामाजिक भावना को भी सम्पृक्त रखोगे क्योंकि मनुष्य विचारशील सामाजिक प्राणी है। उसका जहाँ जन्म तथा जीवन समाज पर निर्भर है, वहाँ वह समाज में ही आशा, उत्साह, प्रसन्नता, सुख, शान्ति, अनुभव, करता है। जहाँ **"द्वितीयाद्वै भयं भवति"** अर्थात् अपरिचित से भय अनुभव होता है, वहाँ व्यक्ति अकेले में भी भय अनुभव करता है।

शब्दार्थ – ध्यान रहे वेद में आया हुआ यह आर्य शब्द आज की तरह आर्य समाजियों के लिए रूढ़ नहीं है क्योंकि वेद के समय तो आर्य समाज था ही नहीं अर्थात् आर्य समाज का सदस्य होना या आर्य समाज से जुड़ा हुआ होना यह आजकल का अर्थ है जैसे कि आजकल आर्य समाज से जुड़े संगठनों के नाम में यह शब्द मिलता है, यथा–आर्य स्कूल, आर्य कॉलेज आदि। वेद की दृष्टि से आर्य शब्द यौगिक है, किसी भी प्रकार से रूढ़ नहीं है तभी तो संस्कृति, हिन्दी भाषा के सभी कोशों में आर्य शब्द = श्रेष्ठ, भले, अच्छे अर्थ में ही आया है। हाँ, गहराई से समझने के लिए जब हम इस शब्द पर विचार करते हैं, तो स्पष्ट होता है कि आर्य जहाँ ऋ धातु से बनता है, वहाँ आर्य का भी तद्धित रूप है ।

ऋ धातु – आर्य की ऋ (गतौ) धातु गति के अर्थ में है और **"गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्च"**। व्यावहारिक रूप से प्रथम किसी का ज्ञान, पुनः ज्ञान के अनुरूप क्रिया अर्थात् सिद्धि की प्रक्रिया का अनुष्ठान, तब फल की प्राप्ति। मूलतः यह सब क्रियाशीलता का परिणाम होता है क्योंकि क्रियाशील ही सारी सिद्धियों. सफलताओं को प्राप्त करता है। क्रियाशील, आलसी खाली (खाली मन शैतान का घर), सुविधा का भोगी नहीं होता। आज सुविधाओं की लालसा के कारण ही जीवन स्तर (स्टैण्डर्ड) उठ रहा है। इसको प्राप्त करने और फिर इसको उठाने या बनाए रखने के लिए धन की दौड़ शुरु हो जाती है जिसका कहीं अन्त, सीमा नहीं। यह आगे से आगे बढ़ती जाती है। हाँ, वेद में जीव को क्रतु (**ओ३म् क्रतो स्मर,** यजु. 40/15) नाम से भी पुकारा गया है जिससे क्रियाशीलता की ओर संकेत जाता है? (**नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति– इन्द्र इच्चरतः सखा, चरैवेति आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः। शेते निपयमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवेति।। चरन वै मधु विन्दति चरन स्वादु मुदुम्बरम। सूर्यस्य पश्य श्रमाणं यो न वन्द्रयते चरंश्चरैवेति।। ऐतरेय ब्राह्मण–3 क्रतु=ज्ञान और कर्म दोनों अर्थ में हैं।**)

अर्थ–अर्य का तद्धित रूप भी आर्य है तथा **"अर्य स्वामि वैश्ययो:"** पाणि. 3,1,103 से प्रमाणित होता है, कि अर्य शब्द स्वामी=किसी का मालिक और वैश्य=व्यापार, उद्योग आदि अर्थ प्राप्ति के कारोबार, करने वाला, वर्ण विशेष के अर्थ में प्रचलित है। अतः स्वामी का पुत्र, स्वामिपन का प्रसार, भाव जिसमें है। यह संसार रूपी सारी रचना पर नियन्त्रण जिसका है, मूलतः वही स्वामी है अतः हम सब का स्वामी, मालिक, सर्वेसर्वा ईश्वर ही है। तभी तो निरुक्तकार ने लिखा है–**"आर्य ईश्वर पुत्रः"** निरु. 6.26 अर्थात् अर्य = ईश्वर और उसका पुत्र ही आर्य है। सारे प्राणियों में से अपने स्रष्टा पिता की सम्पत्ति, विरासत को सँभालने के योग्य, सक्षम मानव ही हैं। तभी तो महाभारतकार ने कहा है–**"न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्"**–शान्ति पर्व 288, 20। सभी प्राणियों में से एक मानव ही अपने पिता की इच्छा, चाहना, हृदय भावना को पूर्णतः समझने, उसको पूर्ण कर सकने में सक्षम है। तभी तो अपने चारों ओर हम देखते हैं कि आज मानव ने अपने सामर्थ्य को यत्र–तत्र–सर्वत्र चरितार्थ किया हुआ है। इसी सामर्थ्य के कारण ही वेद इस प्रकार के वाक्यों से घोषित करता है कि **"अहं भूमिमददामार्याय"** ऋग्. 4–26–2 अर्थात् मैं (परमेश्वर) आर्य = धर्म युक्त गुण–कर्म–स्वभाव वाले सामर्थ्य सम्पन्न व्यक्ति को भूमि (उत्पादित हर प्रकार के ऐश्वर्य) को देता हूँ। अतः तुम सदा ऐसे रहते हुए इसका संवर्धन, संरक्षण करो। यहाँ भूमि शब्द भूमि सदृश उत्पादन के मूलस्रोत, कच्चे माल का वाचक है जिससे दूसरों का उत्पादन, विकास होता है। जैसे भूमि सभी भूमिजों का मूल जड़ है ऐसी वह सम्पदा देता हूँ।

भूमि के महत्व को स्पष्ट करने के लिए ही उसके वसुन्धरा, वसुधा, रत्नगर्भा आदि पर्याय हैं।

प्रत्येक पिता अपने योग्य पुत्र को ही अपनी हर प्रकार की सम्पत्ति विरासत, सर्वस्व सौंपता है। अयोग्य बढ़ाने की तो बात ही क्या उतना भी रखने में समर्थ नहीं होता । प्रायः देखा जाता है कि अयोग्य हर तरह से उजाड़ ही बैठता है।

यह बात हम सब अपने चारों ओर हर कारोबार में देख रहे हैं कि ये बिगड़े हुए, लाड़ले, कहीं परस्पर लड़कर या नशे में डूब कर या बुरी संगत में पड़ कर जो कुछ कर रहे हैं वह किसी से छिपा हुआ नहीं है। अनेक पुत्र अज्ञान, अन्ध विश्वास दुराग्रह में ग्रस्त होकर या दुर्व्यसनों में पड़कर पिता की सम्पत्ति को समाप्त कर देते हैं। यह बात सूर्य के प्रकाश की तरह सर्वत्र प्रकट हो रही है।

वेद के दूसरे शब्दों के समान आर्य शब्द भी प्रकृति–प्रत्यय के मेल से बनता है अतः आर्य शब्द अपने यौगिकपन के कारण अपनी योग्यता, सुपात्रता का निर्देश करता है। आर्य की योग्यता, सुपात्रता को ध्यान में रखकर ही वेद अनेक स्थलों पर उसको सर्वस्व सौंपने का विधान करता है। वेद के आधार पर ही सारे भारतीय साहित्य में भी आर्य की गुणवत्ता को ध्यान में रखकर उसका भरपूर प्रयोग किया है।

आर्य शब्द अपने धात्वर्थ, यौगिकपन के कारण जहाँ अपनी गुणवत्ता को चरितार्थ करता है, वहाँ यह सभी स्वीकार करते हैं, कि वेद में आर्य का विपरीतार्थक शब्द दस्यु 'है'। दस्यु का चित्रण करते हुए वेद में आया है–**"अकर्मा दस्यु अभि नो अमन्तु अन्यव्रतो अमानुषः"** ऋ 10,22,8 न+कर्मा–अकर्मा, निकम्मा, जो कर्मशील न हो, आलसी हो, अपने कर्त्तव्य कर्म का पालन नहीं करता. या उल्टे कर्म करता है। न+मन्तु– अमन्तु = जो विचार शून्य, अज्ञानी, मूर्ख, विचारने में असमर्थ, अविवेकी अर्थात् जो बिना विचार के कर्म करता है, या विपरीत विचार, ज्ञान वाला है। अन्यव्रत = सामाजिक व्रतों, नियमों से विपरीत, भिन्न, अन्य जिसका व्रत व्यवहार है अर्थात् समाज के नियमों का पालन न करने वाला, बेअसूला। अमानुष–न+मानुष अर्थात् मानव सहानुभूति, सहिष्णुता, सच्चरित्रता, उदारता, विवेकशीलता आत्मीयता, सहयोग, प्रेम, न्याय, सत्य, अहिंसा आदि गुणों से जो रहित है, वह अमानुष दस्यु कहलाता है। इससे विपरीत जो कर्मशील, सत्यपथगामी, मननशील, सामाजिक नियम पालक, संस्कृत, सभ्य और सच्चा मानव है, वहीं आर्य कहलाता है। अतः वेद में आए आर्य और दस्यु शब्द जातिवाचक नहीं हैं, अपितु गुणवाचक दोष बोधक हैं, अन्यथा विशेषण देकर इस प्रकार इसका वर्णन न होता । निःसंदेह लोक में दस्यु शब्द डाकू के अर्थ में रूढ़ है और उस पर भी ये विशेषण लागू होते हैं। हाँ, वह जान बूझ कर, स्वार्थवश ऐसा करता है। अपने कार्य में वह विचारशील, सजग होता है, पर मनुष्यता, नैतिकता के प्रति आँखें मूँद लेता है।

आर्य ईश्वरपुत्रः– हम सब ईश्वर को मानने वाले ईश्वर को 'इस संसार को बनाने वाला' के रूप में मानते हैं। ईश्वर का यह रूप, गुण ही हमारे लिए प्रत्यक्ष, स्पष्ट है। ईश्वर की इस रचना के लिए वेद ने कहा है– **"इयं विसृष्टिः"** ऋक्. 10, 129, 7 अर्थात् ईश्वर की यह रचना, कारीगरी बड़ी अनोखी, अपूर्व, अद्भुत है इसके लिए वेद ने विसृष्टि शब्द का प्रयोग किया है। वि+सृष्टि अर्थात् बनाने वाला इसको विविध प्रकार से विशिष्टतापूर्वक सजाता है जैसे कि एक सेब का फल विविध प्रकार की किस्मों में अनेक प्रदेशों में होता है। उनके बाह्य रूप की भिन्नता की तरह उनके स्वाद, गुण में विविधता, विशिष्टता मिलती है।

एक आर्य अपने आपको ईश्वर का पुत्र मानते हुए जीवन में साधारण जनों की तरह संघर्ष करते हुए उदास,

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

गतांक से आगे...

प्राचीन विश्वासों पर वेदों का प्रभाव

● इन्द्रविद्यावाचस्पति

मिश्र का प्राचीन धर्म

जब चीन से चलकर हम मिश्र में पहुँचते हैं और वहाँ के धार्मिक विचारों का अनुशीलन करते हैं, तो हमें भारतीय विचारों से कुछ कम समानता नहीं मिलती। उस समानता को देखकर इस परिणाम पर पहुँचना कठिन नहीं है कि भारत तथा मिश्र के विचारों का परस्पर सम्बन्ध अवश्य रहा है। भारत और मिश्र में धार्मिक विचारों का भिन्न–भिन्न रूप से विकास अवश्य दिखायी देता है, परन्तु प्रारम्भ एक–सा ही है। हम दोनों देशों के विचारों के प्रवाहों के साथ–साथ ऊपर को जायें तो इसमें सन्देह नहीं रहता कि उनका मूल स्रोत कोई एक ही होगा। बहुत विस्तृत विवेचन के लिए हमारे पास स्थान नहीं है। हम कुछ एक मुख्य सिद्धान्तों की तुलना पर ही सन्तोष कर लेंगे।

पहले हम मिश्र के ईश्वर–सम्बन्धी सिद्धान्तों को लेते हैं। अत्यन्त प्राचीन काल में, मिश्र के निवासी एक ईश्वर में विश्वास रखते थे। उनके ईश्वर–सम्बन्धी विश्वास का ***'ईजिप्त का धर्म'*** नामक पुस्तक में डॉ. बज ने निम्नलिखित शब्दों में वर्णन किया है–

"A study of ancient Egyptian texts will convince the readers that the Egyptians believed in one God who was self-existent, immortal, invisible, eternal, omniscient, Almighty and inscrutable, the maker of the heavens, earth and underworld, the creator of the sky and sea, men and women, animals and birds, fish and creeping things, trees and plants, and the incorporeal beings who were the messengers, that fulfilled His wish and word."

"पुराने मिश्र के धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन से पाठक को निश्चय हो जाएगा कि मिश्र निवासी ऐसे एक ईश्वर में विश्वास रखते थे जो स्वयंभू, अमर, अदृश्य, नित्य, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और अजेय है, जो द्युलोक, पृथ्वी और पाताल का निर्माता है, जो आकाश और समुद्र, पुरुष और स्त्री, पशु और पक्षी, मछली और सर्पणशील जन्तु, वृक्ष और वनस्पति का निर्माता है और उन सूक्ष्म प्राणियों का भी उत्पन्न करने वाला है, जो उसकी इच्छा तथा शब्द का पालन करने वाले दूत हैं।"

पुराने मिश्र के ग्रन्थों में देवता रूप में, हापी (Hapi) नाम से ईश्वर की निम्नलिखित शब्दों में स्तुति की गई है–

"He cannot be figured in stone, He is not to be seen in the sculptured images upon which men place the united crowns to the South and the North furnished with uraei, and He cannot be made to come forth from His secret place. The place where He liveth is unknown; He is not be found in the inscribed shrines; there existeth no habitation which can contain Him, and thou canst not conceive His forms in thy heart."

"वह पत्थरों में नहीं चित्रित किया जा सकता, दक्षिण और उत्तर के विशेष आभूषणों से सुसज्जित मुकुट जिन मूर्तियों पर रखे जाते हैं, उनमें भी वह दिखाई नहीं दे सकता और उसे उसके गुप्त स्थान से बाहर नहीं निकाला जा सकता। उसके निवास का स्थान अविदित है, वह अंकित समाधियों में नहीं ढूँढा जा सकता; ऐसा कोई स्थान नहीं है जिसमें वह समा सके। तुम उसकी आकृति का अपने हृदय में ध्यान नहीं कर सकते।"

इन दो उद्धरणों में ईश्वर–सम्बन्धी विश्वासों का सारांश आ जाता है। इन वाक्यों की निम्नलिखित वेद–मन्त्रों से तुलना कीजिये तो आपको अद्भुत समानता दिखाई देगी।

"स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथा–तथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।"

– यजुर्वेद 40.8

वह परमात्मा व्यापक है, शरीर रहित है, उसके शरीर पर घाव नहीं होता, वह नाड़ी, नस के बन्धन से रहित है। वह शुद्ध है, पाप का उसमें लेश नहीं है। सत्य ज्ञान का कहने वाला, ज्ञानी, साक्षी, स्वयं ही विद्यमान और सब पदार्थों का सदा से निर्माण करने वाला वही है।

'न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः।'

जिसका अत्यन्त महान् यश है, उसकी मूर्ति नहीं बन सकती।

"पुरुष एवेद ँ सर्व यद्भूतं यच्च भाव्यम्।" – यजु. 13.2

जो कुछ है या होगा, वह सब कुछ ईश्वर ही में है।

"सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।" –ऋ. 10.190.3

परमात्मा ने सदा की भाँति सूर्य, चन्द्र आदि का निर्माण किया।

इस समानता के अतिरिक्त दो और बातें ध्यान देने योग्य हैं। पुराने मिश्र निवासी जहाँ एक ओर एक देवतावादी थे, वहाँ दूसरी ओर वे अनेक देवतावादी भी थे। उनके देवता भी गिनती में सैकड़ों तक पहुँचते थे। अनेक देवताओं के होते हुए भी वह एक ही देवता को मुख्य मानते थे। सब देवताओं के नाम एक मुख्य देवता के नाम वाची माने जाते थे। तेमू (Temu) आत्मू (Atmu) आदि जो एक ओर सूर्य के नाम हैं, देवों के पिता और ईश्वर के लिए भी प्रयुक्त होते हैं। ओसिरस, आईसिस आदि नाम मिश्र के देवताओं के होते हुए भी प्रायः ईश्वर के विशेष नामान्तर नतर (Neter) के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त होते हैं। बिलकुल यही दशा वैदिक देवतावाची शब्दों की है।

ईश्वर का मुख्य नाम नतर है जिसका अर्थ ऐश्वर्य और बल है। नतर शब्द बिलकुल इन्द्र का पर्यायवाची प्रतीत होता है।

दूसरी बड़ी भारी समानता जीव, उसकी नित्यता, और पुनर्जन्म में विश्वास है। यह विचार मिश्र और भारत का ख़ास अपना है। अन्य देशों में इस स्पष्टता से यह नहीं मिलता, जिस स्पष्टता से इन देशों में मिलता है। मिश्र के प्राचीन धर्म में मरे हुए प्राणी का पुनर्जन्म और न्याय माना जाता था। उसमें जीवात्मा अनी (Ani) कहलाता था, जिसकी अन् धातु से उत्पत्ति प्रतीत होती है। प्र+अनी इन दोनों के मिलाप से प्राणी बनता है। हृदय का नाम 'क' था। 'क' नाम सुखमय आत्मा का है। मिश्र में भी 'क' शब्द चेतना का पर्यायवाची प्रतीत होता है। हमारे साहित्य के स्वर्ग, नरक, यम तथा देवमाता सम्बन्धी मध्यकालिक विचारों का प्रतिबिम्ब भी मिश्र के तत्कालीन धार्मिक साहित्य में पाया जाता है।

मिश्र में इन विचारों की चर्चा को देख कर डॉ. बज ने लिखा है कि यह कहना कठिन है कि मिश्र के धर्म की ये विशेषताएँ कहाँ से आईं। उन्हें सन्देह है, परन्तु सन्देह रखने की कोई बात नहीं। मिश्र में ये सिद्धान्त आगन्तुक थे और जहाँ से वे गए वह स्थान भारत था। मिश्र के धार्मिक विचारों का मूल स्रोत भारत के वेदों में मिलता है।

'आर्यसमाज का इतिहास (प्रथम भाग)' से सामार

गुरुकुल प्रणाली में नैतिकता का स्वरूप

नैतिकता का आधार : धर्म और ऋत –

भारतीय नैतिकता का आधार धर्म और ऋत है। ऋग्वेद (10.190.1) में कहा गया है **"ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत।"** अर्थात् सत्य और ऋत (नैतिक नियम) ही ब्रह्मांड की उत्पत्ति का आधार हैं। गुरुकुल शिक्षा इन्हीं सिद्धांत पर आधारित थी।

शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि व्यक्ति को धार्मिक (righteous) बनाना था। धर्म यहाँ किसी विशेष मत का नहीं, बल्कि सार्वभौमिक नैतिकता का प्रतीक था अर्थात् **"जो सबके कल्याण में हो वही धर्म।"**

चरित्र निर्माण और आत्मसंयम –

गुरुकुलों में शिक्षा का केंद्र बिंदु था–चरित्र निर्माण। *तैत्तिरीय उपनिषद* (1.11.1) में दीक्षित छात्र को गुरु कहते थे **"सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः।"** अर्थात् सत्य बोलो धर्म का पालन करो और आत्म–अध्ययन में आलस्य मत करो यह वचन आज भी चरित्र निर्माण की दिशा में सर्वोत्तम उपदेश है। गुरुकुल में छात्र के भीतर 'स्वयं कोजानने' और 'स्वयं पर संयम रखने' की शिक्षा दी जाती थी।

ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे

● डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

समझ में नहीं आता, आत्मकथा लिखूँ या नहीं और क्या आप इस पर विश्वास करेंगे? क्या जीवन में ऐसे क्षण नहीं आते, जब व्यक्ति बुरी तरह हिल जाता है। जो व्यक्ति कहानीकार के रूप में दूसरों पर कहानी लिखता हो, यदि वह स्वयं कहानी बन जाए तो ? मैने अब तक लगभग पन्द्रह वर्षों में कारागारों के बंदियों पर उनकी आत्मकथाओं के रूप में अनेक कहानियाँ लिखी हैं। उन कहानियों में कल्पना की ऊँची उड़ान है तो शब्दों की कलात्मकता भी। पर अपने बारे में आज मैं जो कुछ लिखने जा रहा हूँ उसमें पीड़ा या आत्मानुभूति के सिवाए और कुछ नहीं है। मैंने सोचा भी नहीं था कि जीवन में ऐसा क्षण भी आयेगा जब दूसरों की पीड़ा उकेरना वाला स्वयं पीड़ा का शिकार बन जायेगा।

यात्रा का शुभारम्भ–

गुजरात भ्रमण के उपरान्त 8 जनवरी 2026 को मैं और मेरी धर्म पत्नी की यात्रा का शुभारम्भ रिलायन्स पेट्रोलियम जामनगर से हुआ। हमें इंडिगो वायुयान से राजकोट से दिल्ली और दिल्ली से देहरादून आना था। यात्रा से दो दिन पूर्व मुझे 78 वर्षीय प्रौढ़ व्यक्ति की कमर में भीषण दर्द हुआ। वहाँ रिलायन्स पेट्रोलियम के हॉस्पीटल में फिजियोथ्रेफिस्ट से उपचार कराया और दर्द निवारक दवायें खा कर यथा समय प्रातः सात बजे राजकोट हवाई अड्डे पर पहुँच गए। सभी औपचारिकताएँ पूर्ण करने के उपरान्त हम राजकोट से वायुमान द्वारा लगभग 10 बजे दिल्ली पहुँच गए। उसके बाद हमें दिल्ली एयर पोर्ट से देहरादून आना था। हमने लगभग चार, घंटे टर्मिनल–1 में ही व्यतीत करने थे। चैकिंग सम्बन्धी सभी औपचारिकताओं को पूर्ण करके हम अन्य यात्रियों के साथ सुरक्षित स्थान पर बैठ गए।

मुसीबतों का वज्रपात– मैंने सोचा भी नहीं था कि एक ग्राम्य, शान्त, छल कपट विहीन सुखद जीवन जीने वाले वृद्ध व्यक्ति को भागा दौड़ी पूर्ण, अशान्त जीवन जीना पड़ेगा तथा उसके ज्ञान–विज्ञान, सदाचार पूर्ण जीवन और साहित्यिक मानदंडों को भीड़ द्वारा कुचल दिया जायेगा। टर्मिनल 1 में विभिन्न प्रदेशों और देशों के हजारों यात्री अपने गन्तव्यों के लिए भागा दौड़ी कर रहे थे। हवाई अड्डा एक विशाल समुद्र के समान प्रतीत हो रहा था जिसमें यात्री तैरते हुए से दृष्टिगत हो रहे थे। सामने एक बड़ी सी स्क्रीन (नाम पट्टिका) लगी हुई थी जिसमें लिख कर आ रहा था कि किस शहर को जाने वाला वायुयान किस गेट पर मिलेगा। टर्मिनल–1 में लगभग 22–23 गेट रहे होंगे। सभी यात्रियों का ध्यान स्क्रीन पर था और वे स्क्रीन देखकर गेट की ओर दौड़ पड़ते थे।

अचानक स्क्रीन पर मेरी नजर देहरादून नगर पर पड़ी, जिसमें लिखा था, गेट नं 21, मैंने सोचा कि हवाई जहाज के जाने में तीन घंटे लगेंगे। तब तक गेट नं० 21 को देख आऊँ ताकि दुबारा जाने में आसानी रहे। मैंने श्रीमती जी से कहा कि मैं गेट नं 21 देखने जा रहा हूँ। शान्त, एकान्त ग्राम्य जीवन जीने वाला मैं विशाल जन समुद्र में कूद पड़ा तथा हजारों की भीड़ को लाँघता हुआ, अनेक गेटों के घाटों को पार करता हुआ गेट नं 21 में पहुँच गया। पर जब लौटने लगा तो विशाल जन समूह की तरंगे मुझे और कहीं बहा कर ले गई। मैं तिनके के समान बहता चला गया और अपने गन्तव्य (ठिकाने) को भुला बैठा। मैं चारों तरफ भटकता रहा पर अपना ठिकाना न पा सका। मैंने लगभग सारे गेट सारी दुकानें और सारी स्क्रीन छान मारी पर सब जगह एक जैसा ही प्रतीत हो रहा था। सारी दुनिया दीख गई पर श्रीमती जी के दर्शन न हुए। मैं किसी से पूछता तो वह कहता उधर जाओ, उधर वाला कहता इधर जाओ। मेरी हताशा बढ़ते लगी। अनेक व्यक्तियों का मार्ग दर्शक आज मैं स्वयं अपनी मंजिल भुला बैठा था। स्वयं को सुशिक्षित और समाज सुधारक मानने वाला मैं बौना–सा लग रहा था।

दूसरा वज्रपात– मैंने अनुभव किया कि मेरी शिक्षा–दीक्षा में कुछ कमी रह गई है। मैने ऐसी शिक्षा क्यों प्राप्त नहीं की जो जन प्रवाह को उल्टी दिशा में अपनी ओर कर सकूँ। आप लोग सोच रहे होंगे कि मैंने अपनी श्रीमती जी को अपने भटक जाने की सूचना क्यों नहीं दी? बताता हूँ, मैंने सोचा कि श्रीमती जी को मोबाइल द्वारा अपने भटक जाने की सूचना दे दूँ लेकिन किस्मत ने मेरे मस्तक पर पत्थर दे मारा। जैकेट में हाथ डाला तो मोबाइल गायब। मुझे लगा दुर्भाग्य मुझे चारों से घेर रहा है। मैंने सोचा, यदि मैंने मोबाइल जैकेट की अंदर की जेब में रखा होता तो चोरी न होता। लेकिन मेरा मोबाइल तो बाहर की जेब में था। मोबाइल के गुम हो जाने पर मुझे ऐसा लगा कि जैसे मेरी आधी जिन्दगी लुट गई है। इसी में तो हमारा ज्ञान–विज्ञान, नम्बर, जनरल नोलेज सब कुछ फीड होते हैं। कोई भी मेरे मोबाइल का दुरुपयोग कर सकता है। मैं प्राणवान होने पर भी निष्प्राण हो रहा था।

तीसरा वज्रपात – आप विचार कर रहे होंगे कि मुझे किसी यात्री के मोबाइल से अपनी पत्नी को फोन कर देना चाहिए था। लेकिन शायद आप विश्वास न करेंगे कि मुझे अपनी पत्नी का मोबाइल नम्बर भी याद नहीं था। उनका मोबाइल नम्बर और नाम मेरे मोबाइल में फीड था और मैं बटन को दबाकर भी फोन कर दिया करता था।

सारे रास्ते बन्द – क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि एक घंटे में मेरी पत्नी की क्या स्थिति हो गई होगी। 75 वर्ष की प्रौढ़ा मेरी पत्नी अजनबी शहर, अनजाने टर्मिनल नं 1 में कैसे साँस ले रही होगी यदि वह अपने मोबाइल से दिल्ली या दिल्ली से बाहर अपने सम्बन्धियों को फोन भी करती तो वे कब तक पहुँच पाते, कैसे ढूँढ़ते और तब तक वह अचेत हो चुकी होती। जहाँ तक मेरा प्रश्न है मैं लगभग अवसाद ग्रस्त हो चुका हूँ। आप यह भी कह सकते हैं कि मुझे हवाई अड्डे से बस अड्डे चले जाना चाहिए था लेकिन मेरी जेब में केवल 300–400रु. थे। बाकी रुपये मेरी पत्नी के पर्स में थे और मैं अपनी असहाय पत्नी को छोड़ कर कैसे चला जाता ?

सारे रास्ते बन्द – क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि एक घंटे में मेरी पत्नी की क्या स्थिति हो गई होगी। 75 वर्ष की प्रौढ़ा मेरी पत्नी अजनबी शहर, अनजाने टर्मिनल नं 1 में कैसे साँस ले रही होगी यदि वह अपने मोबाइल से दिल्ली या दिल्ली से बाहर अपने सम्बन्धियों को फोन भी करती तो वे कब तक पहुँच पाते, कैसे ढूँढ़ते और तब तक वह अचेत हो चुकी होती। जहाँ तक मेरा प्रश्न है मैं लगभग अवसाद ग्रस्त हो चुका हूँ। आप यह भी कह सकते हैं कि मुझे हवाई अड्डे से बस अड्डे चले जाना चाहिए था लेकिन मेरी जेब में केवल 300–400रु. थे। बाकी रुपये मेरी पत्नी के पर्स में थे और मैं अपनी असहाय पत्नी को छोड़ कर कैसे चला जाता ?

कभी–कभी मेरा अहंकार सर्प के समान फुफकारने लगता और कहता, "तू एक पत्रिका का संपादक है, अपनी हार नहीं मानना। तू कारागार के कैदियों का मार्ग दर्शक है, अपनी दीनता प्रकट मत करना। पर ज्यों ही अहंकार का बर्फ पिघलता और हीनता बोध का ताप मान बढ़ता, त्यों ही दुर्भावना का कौआ काँव–काँव करते हुए मुझे फटकारना और कहता, "कल तेरे पाठक पूछेंगे, कहाँ गुम हो गया वह बेचारा, आदर्शवादी संपादक, जेल के किशोर कैदी प्रश्न करेंगे, 'हमें चरित्र का पाठ पढ़ाने वाले गुरुजी किसी षड़यंत्र के शिकार तो नहीं हो गए ? हो सकता है, कल किसी समाचार पत्र में छप जाए कि दिल्ली के टर्मिनल–1 में एक वृद्ध पुरुष और वृद्ध महिला अचेतावस्था में पाये गए। मुझे लगा कि मेरे जीवन का अन्तिम अध्याय लिखा ही जाने वाला है।

सम्पूर्ण समर्पण–जब जीवित रहने के सारे रास्ते बन्द हो गए, तब मुझे गीता का वह श्लोक याद आया जिसमें भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण व्रज' अर्थात् तुम समस्त संकल्प–विकल्पों को छोड़ कर मेरी शरण में आ जाओ। मेरे पास भी ईश्वर शरणागति के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं था।

अब मेरा ईश्वर से डाइरेक्ट मौन अश्रुपूर्ण संवाद हुआ और मैंने विनम्र निवेदन किया– "हे प्रभु! क्या मुझे ये दिन देखने बाकी थे। अब तक मैंने जो तप, साधना, संध्या, हवन, प्रवचन या अन्य शुभ कर्म किये हैं, मुझे उनका प्रतिफल दीजिए। मैं दीन, हीन, अनाम और असहाय बन कर शरीर त्याग नहीं करना चाहता। आप निराकार हैं, आप

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

ईश्वर विचार

● गंगा प्रसाद उपाध्याय

गतांक से आगे...

कृषि–पशुधन से उतर कर दूसरा 'कृषि' है, ऋग्वेद में आया है–

एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम्। ऋग्वेद 3.30.11

(एकः इन्द्रः) अद्वैत परमात्मा में, **(द्वे पृथिवीम् उत द्याम्)** पृथिवी और द्यौ दोनों को, **(समीची वसुमती आ पप्रौ)** वसुमती अर्थात् धन देने वाली बनाया।

यहाँ पृथिवी और द्यौ दोनों लोकों को वसुमती या धन देने वाली कहा है। जब दैव बरसता है तो पृथिवी अन्न उत्पन्न करती है परन्तु मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने ज्ञान द्वारा भूमि से कृषि करके अन्न उत्पन्न करे। पशुओं के समान केवल दैव पर निर्भर न रहे।

सीरा युञ्जन्ति कवयो
युगा वि तन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नयौ।।

अथर्ववेद 3.17.1

(देवेषु सुम्नयौ) देवों के प्यारे, **(धीराः कवयः)** बुद्धिमान् और ज्ञानी लोग, **(सीरा युञ्जन्ति)** हल को जोतते हैं। **(पृथक् युगा वितन्वते)** और बैलों के कन्धों पर जुआ लगाते हैं।

इस मन्त्र में खेती करने वालों को 'कृषि', 'धीर' और 'देवों' के प्यारे कहा है, क्योंकि संसार भर के लिए खाना उत्पन्न करना श्रेष्ठ और ज्ञानी पुरुषों का ही काम हो सकता है। पृथिवी वसुमती है, उसमें वसु या धन भरा पड़ा है परन्तु बिना परिश्रम और ज्ञान के अन्न उत्पन्न नहीं होता। जंगली अशिक्षित मनुष्यों के पास लम्बे चौड़े भूमि भाग पड़े हैं जिनमें किसी ने हल नहीं चलाया। वहाँ के लोग पृथिवी से खाना नहीं ले सकते। जब यही भाग शिक्षित विज्ञान–वेत्ताओं के स्वत्व में आ जाते हैं तो न केवल उन देशों के लिए ही अपितु अन्य देशों के लिए भी खाना सुलभ हो जाता है।

वेद कहता है–

युनक्त सीरा वि युगा तनोत
कृते योनौ वपतेह बीजम्।
विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो
नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा यवन्।।

अथर्ववेद 3.17.2

(युनक्त सीरा) हल को जोतो, **(युगाः वितनोत)** जुओं को सीधा करो। **(कृते योनौ)** खेत में लीकें बनाओ। **(इह बीजं वपत)** और उसमें बीज बोओ। **(विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्)** ईश्वर की कृपा से हमारा भाग्य भरपूर हो। **(नः नेदीय इत् सृण्यः पक्वम् आ यवन्)** और हमारी दरांती के पास पका हुआ अन्न आवे।

अर्थात् यदि हम लोग ज्ञान पूर्वक हल चला कर भूमि को जोतेंगे और लकीरों में बीज बोयेंगे तो ईश्वर की कृपा से अन्न उपजेगा और हम अपनी दरांती (हँसिया) से पके अन्न को काट सकेंगे। ऋग्वेद मण्डल 10, सूक्त 101 में इसी आशय को कुछ शब्दान्तर के साथ वर्णन किया है–

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं
कृते योनौ वपतेह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन् नो
नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात्।।

ऋग्. 10.101.3

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा
वि तन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया।।

ऋग्. 10.101.4

निराहावान् कृणोतन सं वरत्रा
दधातन।
सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं
सुषेकमनुपक्षितम्।।

ऋग्. 10.101.5

{यजुर्वेद अध्याय 12, मन्त्र 68, 67 में भी यही है}

मन्त्र 3 में **'गिरा'** और **'श्रुष्टिः'** दो शब्द हैं। 'गिरा' (वाणी) ज्ञान का द्योतक है और 'श्रुष्टि' अन्न का। ज्ञानी ही अच्छे किसान हो सकते हैं। समाज में किसानों का पद ऊँचा होना चाहिये क्योंकि भूमि पर लौकिक अन्नदाता वही हैं।

5वें मन्त्र में **(आहावान् निः कृणोतन)** अर्थात् जलाशय बनाने का विधान है जहाँ गाय बैल जल पी सकें। **(उद्रिणम् अवतम्)** जलों से भरे हुए कुण्ड, कुएँ या तालाब। 'वस्त्र' को हिन्दी में 'वर्त' कहते हैं। इनसे झावों को बाँध कर खींचने के लिए पानी निकालते हैं। तात्पर्य यह है कि वेदों में खेतों के जोतने, बोने, सींचने और फसल काटने का उपदेश है।

यजुर्वेद अध्याय 18 के 12वें मन्त्र में भिन्न–भिन्न अन्नों के नाम दिये हैं–

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

यहाँ **व्रीहि** (चावल), **यव** (जौ), **माष** (उड़द), **तिल** (मुद्ग), **मूँग, खल्व, प्रियङ्गव, अणु, श्यामाक, नीवार** आदि भिन्न–भिन्न प्रकार के चावल, **गोधूम** (गेहूँ), **मसूर** आदि अन्नों के उत्पन्न करने का विधान है। यह **(यज्ञेन कल्पताम्)** अर्थात् यज्ञ द्वारा उत्पन्न होंगे। यज्ञ का अर्थ यहाँ कृषि यज्ञ है। कृषि या खेती करना यज्ञ है। यज्ञ का अर्थ केवल आग जला कर उसमें आहुति देना नहीं है। **उपजीविका के लिए पदार्थों का उत्पन्न करना भी यज्ञ है।** इस अर्थ में हर किसान यजमान या याज्ञिक है। राजा जनक को पौराणिक गाथाओं में शुनासीर या हल जोतने वाला कहा है। यह शुनासीर शब्द वेदों से लिया गया है।

शुनासीरा हविषा तोशमाना
सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै।

अथर्ववेद 3.175

(शुनासीरा अर्थात्) हल और हल चलाने वाले लोगो, **(हविषा तोशमानाः)** उपजीवन के पदार्थों से प्रसन्नचित्त होकर, **(ओषधीः)** पौधों को, **(सुपिप्पलाः)** फलवान्, **(कर्तम्)** करो, **(अस्मै)** प्रजाजन के लिए।

यहाँ **शुनासीरा, तोशमाना कर्तम्** ये द्विवचनान्त हैं। कृषि कार्य और कृषक दोनों को सम्बोधन किया है। शुन आर्थात् हल और 'सीर' या उसका फलक ये दोनों कृषि कार्य के प्रतीक हैं।

खेती को सर्वोत्तम बताना प्राचीन वैदिक शिक्षा है। क्योंकि समस्त मानव जीवन का भौतिक भार कृषि पर है।

इस मन्त्र में खेती करने वालों को 'कृषि', 'धीर' और 'देवों' के प्यारे कहा है, क्योंकि संसार भर के लिए खाना उत्पन्न करना श्रेष्ठ और ज्ञानी पुरुषों का ही काम हो सकता है। पृथिवी वसुमती है, उसमें वसु या धन भरा पड़ा है परन्तु बिना परिश्रम और ज्ञान के अन्न उत्पन्न नहीं होता। जंगली अशिक्षित मनुष्यों के पास लम्बे चौड़े भूमि भाग पड़े हैं जिनमें किसी ने हल नहीं चलाया। वहाँ के लोग पृथिवी से खाना नहीं ले सकते। जब यही भाग शिक्षित विज्ञान-वेत्ताओं के स्वत्व में आ जाते हैं तो न केवल उन देशों के लिए ही अपितु अन्य देशों के लिए भी खाना सुलभ हो जाता है।

कृषि–यज्ञ का ही पूरक खनिज पदार्थों की प्राप्ति के लिए खनन यज्ञ है। देखो–

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामं च मे लोहञ्च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।

यजुर्वेद 18.13

यहाँ **(अश्मा)** पत्थर, **(मृत्तिका)** मिट्टी, **(गिरयः)**, चट्टानें, **(पर्वताः)** पहाड़ी पत्थर, **(सिकता)** बालू, **(वनस्पतयः)** पहाड़ी लकड़ियाँ **(हिरण्य)** सोना, **(श्याम)** शायद चाँदी, **(लोह)** लोहा, सीसा, **(त्रपु)** जिस्त का वर्णन है। ये पदार्थ यन्त्र आदि के निर्माण में काम आते हैं।

व्यापार–

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स
न एतु पुरएता नो अस्तु।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स
ईशानो धनदा अस्तु मह्यम्।
ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा
द्यावापृथिवी संचरन्ति।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा
क्रीत्वा धनमाहराणि।।

अथर्ववेद 3.15.1, 2

यहाँ 'वणिज' या व्यापारी को इन्द्र कहा है। व्यापार के लिए यातायात की सुविधा चाहिये। मार्ग में डाकू (परिपन्थिनं) और व्याघ्र आदि घातक जन्तु (मृग) न मिलें।

(ये बहवो पन्थानः) जो बड़े मार्ग **(द्यावापृथिवी अन्तरा)** पृथिवी और द्युलोक अर्थात् अन्तरिक्ष में हैं जहाँ **(देवयानाः)** वायुयान चलते हैं **(ते मा पयसा घृतेन जुषन्तां)** वे मुझे जीवन की सुविधाएं दूध घी देवें। **(यथा क्रीत्वा)** जिससे मैं व्यापार करके **(धनं)** धन को **(आहराणि)** ले सकूँ।

यहाँ व्यापार मण्डलों और व्यापारी वायुयानों का उल्लेख है। 'वणिज' अर्थात् बनिया इन्द्र है और उसके वायुयान देवयान हैं। 'क्रीत्वा' अर्थात् क्रय–विक्रय करके ही व्यापारी एक देश का माल 'दूरस्थ' देश में पहुँचा सकते हैं। और इसी से धन मिलता है। चार वर्णों में वैश्य मानव जाति का वह विभाग है जिसका सम्बन्ध उत्पत्ति (कृषि, कला, कौशल आदि) यातायात और विनिमय तथा धन–प्राप्ति के अन्यान्य विभागों से है।

शिक्षा, चिकित्सा, कला कौशल, आदि के विषय में बहुत सामग्री है जो यहाँ स्थानाभाव से नहीं दी जा सकती।

'गंगा ज्ञान सागर' के ईश्वर विचार अध्याय से साभार

माण्डूक्योपनिषद् में ओ३म् का वर्णन

{महात्मा नारायण स्वामी रचित पुस्तक *'उपनिषद् आध्यात्म विद्या रहस्य'* में लिखित उपोद्घात}

● पं. भीम सेन शर्मा

प्रारम्भ माण्डूक्योपनिषद् माण्डूक्यशाखान्तर्गत है। इसमें विशेष रीति से ओ३म् का वर्णन है।

ओ३म् शब्द – अवतेष्टिलोपश्च। (उणादिसूत्र 1.14) से मन् प्रत्यय और टि लोप होकर 'अव् रक्षणे' धातु से ओम् शब्द सिद्ध होता है। ओंकार शब्द की यह सिद्धि व्याकरण के अनुसार है।

ब्राह्मण ग्रन्थ इसकी सिद्धि दूसरे प्रकार से करते हैं। गोपथ ब्राह्मण (प्रपा. 1 का. 26) में लिखा है–

को धातुरित्याप्लृधातुः •••• तस्मादपि ओङ्कारः सर्वमाप्नोतीत्यर्थः।।

अर्थात् जो सर्वत्र व्यापक हो वह ओंकार है।

इससे भी भिन्न ओंकार शब्द की सिद्धि स्मृतिकार करते हैं। उनका कहना है कि अकार, उकार और मकार से मिलकर ओम् बनता है। यथा–

अकारञ्चाप्युकारञ्च मकारञ्च प्रजापतिः।। – मनुस्मृति 2.76

माण्डूक्योपनिषद् में त्रिमात्रिक ओम् की व्याख्या स्मृतिकार की बात मानकर ही की गई।

वेद और ओम्

यजुर्वेद अध्याय (2.13) में है **'ओम् प्रतिष्ठ।'** अर्थात् मेरे हृदय में ओम् प्रतिष्ठित होवे। इसी वेद के 40वें अध्याय में भी ओम् का वर्णन आया है–**(1) ओं क्रतो स्मर तथा (2) ओं खं ब्रह्म** अर्थात् (1) हे जीव ! ओम् का स्मरण कर (2) ईश्वर महान् और व्यापक है।

वेद मन्त्रों के प्रारम्भ और अन्त में भी ओम्

ओमभ्यादाने। (अष्टाध्यायी 8.2. 87) के नियम से, यज्ञ में मन्त्रों का उच्चारण करते समय, ओम् शब्द मन्त्र के प्रारम्भ में जोड़ दिया जाता है और **'प्रणवष्टेः।'** (अष्टा. 8.2.89) के नियम से मन्त्र के 'टि' की जगह ओम् हो जाता है। **'अचोऽन्त्यादि टि'** (अष्टा. 1.1.64) के नियम से अचों में अन्तिम अच् जिस समुदाय के आदि में हो वह समुदाय **'टि'** संज्ञक होता है, जैसे वेद की इस प्रतीक में **"अपां रेतांसि जिन्वति"** की जगह **"अपां रेतांसि जिन्वतोम्"** हो जाता है। आदि और अन्त में ओम् के बढ़ाने से ऋग्वेद की पहली ऋचा इस प्रकार पढ़ी जायेगी–

ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमोम्।।

मनुष्य जीवन के आदि और अन्त में भी ओम्

'जातकर्म संस्कार' में जो बालक के उत्पन्न होने के बाद ही किया जाता है–बालक की जिह्वा पर ओम् लिखने का विधान है और मनुष्य जब मरता है तब अन्त में उसे भी ओम् के उच्चारण करने की शिक्षा यजुर्वेद के 40वें अध्याय में **'ओं क्रतो स्मर'** से दी गई है। तात्पर्य यह है कि मनुष्यों को अपना जीवन ओम् से प्रारम्भ करके ओम् के स्मरण के साथ ही समाप्त करना चाहिए।

ओम् का समस्त ब्रह्माण्ड से सम्बन्ध

किस प्रकार ओम् का सम्बन्ध समस्त ब्रह्माण्ड से है, यह प्रकट करने के लिए आगे यह स्पष्ट हो जायेगा कि ओम् की प्रत्येक मात्रा का सम्बन्ध किस–किस से है।

ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है– 3 वेद उत्पन्न होते हैं। (1) अग्नि से ऋग्वेद (2) वायु से यजुर्वेद (3) आदित्य से सामवेद।

त्रयो वेदा अजायन्त। ऋग्वेद एवाग्नेरजायत। यजुर्वेदो वायोः, सामवेद आदित्यात्। तान् वेदानभ्यतपत्। तेभ्योऽतप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त। भूरित्येव ऋग्वेदादजायत। भुवरिति यजुर्वेदात् स्वरिति सामवेदात्। तानि शुक्राण्यभ्यतपन्। तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्त। अकार उकारो मकार इति तानेकदा समभरत्। तदेतद् ओमिति। (ऐतरेय ब्रा. 95 पंचमिका खण्ड 32)

नोट–इस वाक्य में जो तीन वेदों का वर्णन है इसका तात्पर्य यह नहीं हो सकता कि चौथा अथर्ववेद उत्पन्न नहीं हुआ किन्तु विषय की दृष्टि से उसका समावेश उन्हीं विषयों में होता है जो पहले 3 वेद के हैं इसलिए उसके पृथक् वर्णन की प्रायः प्रथा नहीं है।

'उन वेदों के तपाने से तीन लोक उत्पन्न होते हैं–(1) ऋग्वेद से 'भूः' (2) यजुर्वेद से 'भुवः' (3) सामवेद से 'स्वः'।

लोक– पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ
वेद–ऋक्, यजुः, साम
व्याहृति–भूः, भुवः, स्वः
मात्रा–अ, उ म् अमात्र
अवस्था. 4 पाद–जागृत प्रथम पाद, स्वप्न द्वि० पाद, सुषुप्त तृ. पाद, तुरीय च. पाद
विश्वात्मा के 4 रूप–वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञ, शिव
कोश–अन्नमय, प्राणमय मनोमय विज्ञानमय, आनन्दमय
शरीर–स्थूल, सूक्ष्म, कारण
फल– 1 आदि 2 व्याहृति, 1 उत्कर्ष 2 उभयप्रपंच, 1 ज्ञानप्राप्ति 2 आत्ममहत्त्व
विशेष– The Consciousness working in the स्थूल शरीर, The Consciousness working in the स्थूल शरीर, The Consciousness working in the कारण शरीर from which it can make an impression on the physical brain, That is a state beyond the limitation of the five fold पाँचभौतिक world

इन तीन लोकों (व्याहृतियों) के तपाने से तीन वर्ण उत्पन्न होते हैं– (1) भूः से अ (2) भुवः से उ (3) स्वः से म्। इन तीनों के मिलने से ओम् बन जाता है।

(2) ऋग्वेद का सम्बन्ध पृथिवी से, यजुर्वेद का सम्बन्ध अन्तरिक्ष से सामवेद का सम्बन्ध द्यौ लोक से है।

(3) ओम् तथा उद्गीथ पर्यायवाचक शब्द हैं–छान्दोग्योपनिषद् में एक जगह कहा गया है कि जो उद्गीथ है वही प्रणव (ओम्) है और जो प्रणव है वही उद्गीथ है। **{य उद्गीथः स प्रणवः यः प्रणवः स उद्गीथः। (छा. 1.51)}** इसी उपनिषद् के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि इन 5 भूतों का रस पृथिवी है। **{पृथिवी में अन्य चारों भूतों के गुण शब्द, स्पर्श, रूप और रस भी अपने गुण गन्ध के सिवा होते हैं इसलिए इसे सब भूतों का रस कहा गया है।}** पृथिवी का रस जल है और जलों का रस ओषधि है, ओषधियों का रस पुरुष है, पुरुष का रस वाणी है। वाणी का रस ऋचाएँ हैं, ऋचाओं का रस साम है और साम का रस उद्गीथ (ओम्) है। **{एषां भूतानां पृथिवी रसः। पृथिव्या आपो रसः। अपामोषधयो रसः। ओषधीनां पुरुषो रसः। पुरुषस्य वाग्रसः। वाच ऋग्रसः। ऋचः साम रसः। साम्न उद्गीथो रसः। (छा. 1.1.2)}**

(4) ओंकार की महिमा प्रकट करते हुए गोपथ ब्राह्मण में एक जगह कहा गया है–जो ओंकार को नहीं जानता वह वेद के वश में नहीं होता और जो जानता है वह ब्रह्म (ईश्वर) तथा वेद दोनों के वश में होता है इसलिए ओंकार ऋग्वेद के अध्ययन में ऋग् रूप होता है। यजुः के अध्ययन में यजुः रूप, साम के अध्ययन में साम रूप, सूत्र में सूत्र रूप, ब्राह्मण में ब्राह्मण ग्रन्थ रूप, श्लोक में श्लोक रूप, ओम् के अध्ययन में ओंकार रूप होता है। **{यो ह वा एतमोङ्कारं न वेद न वशः स्यादिति। अथ य एवं वेद ब्रह्मवशः स्यादिति। तस्मादोङ्कार ऋचि ऋग् भवति। यजुषि यजुः। साम्नि साम। सूत्रे सूत्रम्। ब्राह्मणे ब्राह्मणम्। श्लोके श्लोकः। प्रणवे प्रणव इति। (गोपथ प्रपाठक 1 ब्राह्मण 29)}**

प्राचीनकाल से ओम् संसार में व्यापक शब्द के रूप में अब तक प्रचलित चला आ रहा है। सैमिटिक जातियों में इसका उच्चारण 'एमिन' (Amen) और अरब की जातियों में इसका रूप 'आमीन' (ओम्) हो गया है।

जिन भूर्भुवः स्वः से ओम् की उत्पत्ति का वर्णन किया जा चुका है उनके अर्थों से प्रकट होता है कि ओम् परब्रह्म परमेश्वर के स्वरूप का भी द्योतक है। **'भू सत्तायाम्'** धातु से **भूः** का अर्थ **सत्** है। **"भुवः अवचिन्तने"** से भुवः चित् को कहते हैं। स्वः नाम आनन्द का है। इस प्रकार भूर्भुवः स्वः का अर्थ सच्चिदानन्द होता है। ओम् जहाँ ईश्वर का नाम है वहाँ उससे उपर्युक्त प्रकार से ईश्वर का सच्चिदानन्द स्वरूप होना भी प्रकट होता है, यही ओम् की विशेषता है।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल ही में एक मन्त्र इस प्रकार से है–

ऋग्वेद में वाणी और ओंकार का विवरण–

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि
तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति
तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।।

–ऋ. 1.164.45

मन्त्र का भाव यह है कि वाणी के 4 पद हैं जिनमें से तीन (परा, पश्यन्ती, मध्यमा) गुहा में (नाभि से कण्ठ तक) रहते हैं, उन्हें केवल मननशील विद्वान् ही जाना करते हैं अन्य (सर्वसाधारण) नहीं। तुरीय चौथी (वैखरी) मनुष्य बोला करते हैं।

परा वाणी

वाणी का प्रादुर्भाव कहाँ से और किस प्रकार होता है, यह जानने के

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

☞ पृष्ठ 07 का शेष

उपोद्घात

लिए आवश्यक है कि यह जान लिया जावे कि नाभि शरीर का केन्द्र और अत्यन्त आवश्यक केन्द्र है। गर्भस्थ बालक के जीवन का आधार नाभि ही हुआ करता है। इसी के द्वारा वह पुष्ट हुआ करता है और शरीर के विकास के लिए उपयोगी साधन को ग्रहण और धारण किया करता है। शरीर में आत्मा की उपस्थिति और सम्पर्क से, जो शक्ति, शरीर के अन्तर्गत सभी कारोबार चलाने के लिए, शरीर में उत्पन्न हुआ करती है और प्रत्येक अन्तः और बाह्य इन्द्रियों को, इन्द्रियत्व प्रदान किया करती है, उसी शक्ति से एक स्पन्दन अथवा विचार स्फुटित हुआ करता है।

अकार

वाणी की दुनिया में उसका नाम व्यापकता आदि गुणों से अकार हुआ करता है। इस स्वाभाविक सहज आत्मसमुद्भूता शक्ति का उद्गम नाभि प्रदेश ही हुआ करता है और शरीर के निर्माता, एक–एक कण (Cell) में भर जाया करता है। इस चेतना के प्रकाश रूप शक्ति से शरीर के आन्तरिक और बाह्य प्रत्येक कण (शरीरावयव) स्पन्दनशील और स्फूर्तिमान् हो जाते हैं। यही शक्ति विचारान्दोलन (Thought vibration) के रूप में परिवर्तित होकर उदय होने वाली वर्णात्मक वाणी का कारण हुआ करती है और परा वाणी कही जाती है।

नाभिप्रदेश से नाभिस्थ प्राण के आश्रय से उठकर उपर्युक्त पश्यन्ती और परावाणी हृदयस्थ प्राण को देखती अर्थात् उसका मध्यमा वाणी आश्रय, उन्मुख होने के लिए, लेती है तब उसका नाम 'पश्यन्ती वाणी' हुआ करता है। यहाँ से कण्ठ प्रदेशों तक पहुँचने के मार्ग में इस वाणी और बुद्धि (अर्थात् मस्तिष्क) से आने वाली वृत्ति का संगम होता है।

उकार

पश्यन्ती वाणी के रूप में परिवर्तित होकर, मध्यमा वाणी का रूप धारण कर लिया करती है। पश्यन्ती और मध्यमा वाणी उकार प्रदेश की सीमा में रहा करती है।

ये वाणी के तीन भेद हैं जिनके लिए वेदमन्त्र में कहा गया है कि उनका स्थान 'गुहा' वह आकाश, जो नाभि और कण्ठ प्रदेश के मध्यवर्ती होता है और जिनके लिए शिक्षा दी गई है कि उनका ज्ञान मननशील विद्वानों ही को हुआ करता है।

वैखरी वाणी और मकार

उपर्युक्त गुहा प्रदेशस्थ वाणी अथवा यों कहिये कि संकल्पमय वाणी के रूप में परिवर्तित स्पन्दन और विचार–स्फुर्णा कण्ठस्थ प्राण के आश्रय से समीपवर्ती मर्म–व्यूह (Nervous system) के क्रियातन्तुओं (Motion Nerves) को संचालित करके वर्णात्मक रूप में आ जाया करती है। इस अवस्था को प्राप्त, गुहा प्रदेशस्थ वाणी, वैखरी वाणी कही जाया करती है। यहाँ मकार की सीमा समाप्त हो जाती है और वाणी भी पूरी होकर कण्ठ के बाद ऊपर गई हुई वाणी खुले हुए ओष्ठों को बन्द कर दिया करती है। इस प्रकार नाभि से उठा हुआ नाद उन्नत होता हुआ सार्थक वाणी के रूप में परिवर्तित हो जाता है और ओंकार की तीनों मात्राओं की पूर्ति भी हो जाती है। यह बात ओंकार के उच्चारण से प्रकट हो जाती है।

ईश्वर की ओर चलने का वास्तव में क्रम ही यह है। वेद और उपनिषदों में जगह–जगह यह शिक्षा दी हुई मिलती है कि मनुष्य आत्मस्थ होकर ईश्वर का साक्षात् किया करता है। आत्मा शरीर के भीतर है, इसलिए भीतर चलकर ही कोई आत्मस्थ हो सकता है। उसी आत्मस्थ हो जाने को तुरीयावस्था कहा जाता है इसीलिए उपनिषद् में जाग्रत से स्वप्न, स्वप्न से सुषुप्ति और सुषुप्ति अवस्था से तुरीया की ओर चलने का विधान है और इसी क्रम से इनका विवरण भी दिया गया है।

'उपनिषद् आध्यात्म विद्या रहस्य'
'ग्यारह उपनिषद्' से साभार

☞ पृष्ठ 03 का शेष

आर्यो ! आओ मूल ...

निराश, हताश नहीं होता अपितु ईश्वरीय व्यवस्था को समझने का यत्न करता है जैसे कि कृषि में बिना परिश्रम, संघर्ष, स्पर्धा के इसके फल प्राप्त नहीं होते। जो व्यक्ति जितनी सूझ–बूझ से आशापूर्वक कृषि कार्य करता है वही उसमें सफल, सुखी, उत्साहित होता है। कृषि जैसी ही जीवन की स्थिति है, अतः शास्त्र स्थान–स्थान पर जीवन, शरीर की कृषि से समता दर्शाते हैं।

परम पिता परमात्मा किसी के पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार उसको वह–वह शरीर देता है। संसार और शरीर दोनों ही प्यारे प्रभु की देन, वरदान, रचनाएँ हैं।, कुछ इनको झंझट, जी का जंजाल, माया, धोखा, दुःखों का घर मानते हैं। दयालु प्रभु की न्याय युक्त यह दया, देन, रचना, दुःखों का घर धोखा आदि कैसे कही जा सकती है? यहाँ विचारने वाली सबसे पहली बात लिए यही है कि जब ईश्वर सर्वज्ञ और हमारा परमपिता है, तो वह अपनी कोई रचना अपनों के लिए ही दुःखों का घर, धोखा आदि रूप में कैसे कर सकता है? जबकि एक साधारण से साधारण संसारी पिता अपनों के लिए कोई भी चीज दुःख पूर्ण नहीं बनाता।

जबकि हमारे शास्त्र मानव शरीर को विशेष रूप "धर्मार्थकाममोक्ष सारोग्यं मूलमुत्तमम् (चरक सूत्र– 1, 15) कहते हैं अर्थात् यह मानव तन, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तथा आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक दुःखों, तीनों तापों से छुटकारा दिलवाने में सहयोगी बनाते हैं। जिसका स्पष्ट अभिप्राय है कि संसारी सुख और पारमार्थिक आनन्द शरीर द्वारा ही प्राप्त होता है। तभी तो कहा है "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनंम (कुमारसम्भव – 5,33) इसी महत्त्वपूर्ण रहस्य को सामने रखकर चरक महर्षि ने कहा है–

सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्।
चरक निदान 6,7

अर्थात् सर्वतः प्रथम ध्यान देने योग्य बात बताते हुए कहा है, कि अन्य सब कर्मों बातों को पीछे रखकर पहले शरीर की संभाल करें। क्योंकि इसके अस्वस्थ, बीमार होने पर अन्य सब होते हुए भी न हुए जैसा हो जाता है। इसीलिए हम अपने जीवन में पग–पग पर देखते हैं कि सारी सिद्धियाँ सफलताएँ शरीर द्वारा होने वाले परिश्रम पर निर्भर हैं।

यह जीवन तथा जगत् प्रभु की अद्भुत रचना है द्य अतः ये मिथ्या, माया नहीं हो सकती। यह तो एक अनोखा अवसर है जिससे हम 'प्रत्येक प्रकार' की प्रगति कर सकते हैं। जैसे कि भारतीय मूल के अमर्त्यसेन ने अर्थशास्त्र में विशेष कार्य करके नोबेल पुरस्कार लेकर इस अध्ययन शोध के अवसर का कैसा अच्छा लाभ उठाया। ऐसे ही हम अपने चारों ओर देखते हैं कि अनेक क्षेत्रों में सैंकड़ों ने उन–उन प्राप्त अवसरों का लाभ उठाकर केवल अपना नाम, यश ही उज्जवल नहीं किया, अपितु धन, प्रतिष्ठा भी प्राप्त की। ऑलम्पिक खेलों में हजारों भाग लेते हैं। जो कि अपने–अपने देश की दृष्टि से योग्यतम होते हैं। इस अवसर को प्राप्त करने वालों में से दो सौ के लगभग ही पुरस्कार प्राप्त करते हैं। इनमें से कुछ तो तीन – चार या इससे अधिक स्वर्णपदक प्राप्त करते है। 2004 में भारतीयों में से केवल राज्यवर्धन राठौर ने ही रजत पदक प्राप्त करके भारतीयरू स्तर पर नाम, धन ही प्राप्त नहीं किया। अपितु भारत देश के गौरव को भी बढ़ाया। यह सबै तभी सिद्ध होता है, जब कोई खेल भावना के साथ आशा, उत्साह पूर्वक अवसर का लाभ उठाने की तीव्र तड़प से भरा होता है।

मेरा अपना जीवन इसका साक्षी है, कि हमारे माता– पिता ने अपने सम्बन्धों, कर्त्तव्यों को निभाकर यह जीवन रूपी अवसर हमें दिया है। ऐसे ही हमारा जिससे जो सम्बन्ध है, उसके अनुरूप सम्बन्ध को निभाते हुए, अपने जीवन को सफल बनाएँ। तभी तो वेद यत्र– तंत्र रिश्तों का उदाहरण देकर बात को समझाता है।

हाँ, यह ध्यान देने योग्य बात है कि लक्ष्य पर पहुँचने के लिए सही राह पर चलना आवश्यक होता है, भटकना नहीं। अतः आइए! जीवन सफलता के लिए सही राह (सुपथा, यजु.–40.16) को पहचानें और अपनाएँ। वह मार्ग है

1. इस जगत् के स्वामी ने हमारे भले के लिए ही सारे भौतिक पदार्थ दिए है। अतः उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए और आत्मिक बल प्राप्त करने के लिए उसकी उपासना, भक्ति करें। ईश्वर ही सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान आदि गुरुयुक्त हैं। जिस–जिस में ऐसे गुण नहीं हैं, ऐसे को प्रभु के स्थान पर अपना आराध्य न बनाएँ।

2. ऐसे गुणनिधान ईश्वर की आज्ञाओं का पालन ही धर्म, भक्ति, आस्तिकता है। तभी तो हमारे शास्त्र, कहते हैं कि ईश्वर के ज्ञानमय वेद ही उसकी आज्ञाएँ हैं। अतः वही ही धर्म है। तभी तो – "तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् वैशेषिक" 1.3.1, चोदना लक्षणोर्थो धर्मः (मीमांसा 1.1.2) सदृश वचन प्रचलित हुए हैं। यह ध्यान रहे धर्म आचरण की चीज है, कीर्तन, प्रदर्शन की ही नहीं और तभी तो कहा है–**"आचारः परमो धर्मः।"** (मनु= 1.108)

क्रमशः

182 शालीमार नगर,
होशियारपुर 146001

☞ पृष्ठ 02 का शेष

प्रभु-भक्ति

मिर्च अथवा कॉफी का अधिक प्रयोग करते हैं और मांस–मद्य इत्यादि अभक्ष्य खाते हैं उनके स्वभाव में कड़वापन बढ़ जाता है, सहनशीलता कम हो जाती है और उनका मन अधिक चंचल हो उठता है। वे देर तक एक ही आसन में बैठ नहीं सकते। इटली के भक्त पाइथागोरस (Pythagoras) का यह सिद्धान्त था कि मनुष्य–मन का निर्माण उन वस्तुओं पर निर्भर है, जो भोजन द्वारा उसके पेट में जाती हैं। महर्षि दयानन्द ने इसीलिए मद्य–मांस का निषेध स्थान–स्थान पर किया है।

मन की शुद्धि का पूरा उपाय यह है कि इसको बुरे संकल्पों तथा विचारों से अलग रखा जाए। मन एक ऐसी शक्ति है, जो कभी भी चुपचाप होकर बैठ नहीं सकती इसीलिए इसे गीता में "चंचल तथा प्रमथन स्वभाव वाला" कहा गया है। यह निश्चल तो होगा नहीं, इसे विचारों से शून्य करने के लिए भी बहुत लम्बा समय लगेगा इसलिए पहले मन को शुभ–संकल्पों में लगाना चाहिए। यजुर्वेद के 34वें अध्याय में इसीलिए छः ऐसे मन्त्र आये हैं, जिनमें बारम्बार यही प्रार्थना है कि **"तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु"** अर्थात् मेरा मन सदा शिव–संकल्पवाला हो।

जब सत्संकल्प तथा सुविचार मन में लाए जाएँगे तो फिर खोटे विचार मन में कोई स्थान न पाकर स्वयमेव लौट जाएँगे–

प्रीतम छवि नैनन बसी,
पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय 'रहीम' लखि,
आप पथिक फिरि जाय।।

ब्रह्मचर्य–

इस प्रकार जब मन्दिर के बाहर और भीतर की सफाई हो जाती है, तब इस मन्दिर में बैठकर भगवान् की आराधना का अधिकार भक्त को प्राप्त हो जाता है, तब वह प्रभु–भक्ति के महान् द्वार में प्रवेश करता है, तब वह उपासक बनता है, प्रभु के समीप बैठता है, और भगवान् के निकटतर हो जाता है। परन्तु इन सब बातों के साथ यह आवश्यक बात सदा अपने सम्मुख रखनी चाहिए कि प्रभु मन्दिर की नींव ब्रह्मचर्य है। लोग अपने शरीर के वास्तविक तत्त्व और जौहर को बाहर फेंकते हैं और इसकी रक्षा नहीं करते। वे अपनी इस नादानी पर रोएँगे, वे क्षणिक, झूठे तथा 'कल्पित आनन्द' के लिए अपना अनमोल रत्न गँवा रहे हैं। वे अपने हाथों से अपने पाँव पर कुल्हाड़ा चलाकर अपना सत्यानाश कर रहे हैं। वीर्य शरीर में मन और प्राण ही को नहीं, अपितु आत्मा को भी शक्ति देनेवाली वस्तु है। इस शरीर में आत्मा को यदि कुछ प्राप्त हो सकता है तो वीर्य ही से। आत्मा है सूक्ष्म, वह किसी स्थूल वस्तु को तो ग्रहण करेगा नहीं, सूक्ष्म को ग्रहण करेगा, और यह वीर्य ही है। जब इसका भण्डार शरीर में जमा हो जाता है तो इसका फिर इत्र खिंचता है और उससे ओज पैदा होता है। यह ओज एक सूक्ष्म तत्त्व है, जिसे आत्मा ग्रहण करता है और महाबलवान् होकर ओजस्वी बन जाता है, परमात्मा की मित्रता का अधिकारी बनकर उसके बराबर बैठने के लिए कहता है–

ओजोऽसि ओजो मयि धेहि।

अतएव, प्रभु–मन्दिर के इस मूल तत्त्व की ओर विशेष ध्यान देना होगा। स्थूल भोजन या अन्न का किस प्रकार सूक्ष्म तत्त्व बनता है, उसकी विधि यह है–

जो अन्न खाया जाता है सबसे पूर्व इसका रस बनता है, रस फिर रक्त में परिवर्तित हो जाता है, रक्त का इत्र खिंचता है तो फिर मांस बनता है, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से वीर्य। इस वीर्य की मात्रा बहुत थोड़ी होती है। यदि इसे शरीर में सँभालकर रक्खा जाए, बुरे विचारों, गन्दी कहानियों और अश्लील सिनेमाओं से बचाया जाए और इसका रुख नीचे की बजाए ऊपर की ओर किया जाए, तब यह वीर्य बहुत देर के पश्चात् परिपक्व होकर 'ओज' बनने लगता है। ओज भी दो प्रकार का होता है। एक **'पर ओज'**, दूसरा **'अपर ओज'।** यह ओज अन्त में सूक्ष्म हो जाता है और आत्मा के काम आता है। वेद भगवान् ने तो ब्रह्मचर्य को भी प्रभु–प्राप्ति का बड़ा साधन बताया है और स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है कि जो गृहस्थी नियमानुकूल चलते हैं और मर्यादा में रहते हैं, उनकी गणना भी ब्रह्मचारियों में ही होती है।

अतएव वीर्य की बहुमूल्यता को आँकते हुए इसे अपनी आत्मा के लिए सुरक्षित रखना चाहिए।

यही है भगवान् के मन्दिर का मूल–तत्त्व। इसके गिरने से मन्दिर गिरने लगता है और जब मन्दिर गिरने लगे तो पुजारी का सर्वनाश सामने प्रलय–ताण्डव करने लगता है। इसलिए पूरे यत्न से इसकी रक्षा करनी चाहिए।

क्रमशः

☞ पृष्ठ 05 का शेष

ईश्वर पर चिर विश्वास

साकार बन कर मेरी अंगुली पकड़ कर मुझे मेरे गन्तव्य की ओर नहीं ले जा सकते लेकिन मेरी दिव्य दृष्टि बन कर मेरा मार्ग दर्शन तो कर सकते हैं।

आशा की किरण – मेरी करुण प्रार्थना ईश्वर तक पहुँच चुकी थी और उसका परिणाम भी सामने आ गया। भीड़ में भटकते–भटकते अचानक मेरी नजर ताँबे से बने हुए एक विशाल काय अश्व (घोड़ा) के स्तूप (प्रतिमा) पर पड़ी। तत्काल मुझे याद आया कि इसी स्तूप के पास गुजरते हुए मेरी पत्नी ने कहा था कि इसके नीचे हम फोटो खिंचवा सकते हैं। मन में आशा की किरण जागी ! धर्म पत्नी यहीं कहीं आस–पास होगी और चमत्कार, पत्नी पर, मेरी नजर पड़ गई। मुझे लगा, मेरा खोया हुआ संसार मिल गया है। अवरुद्ध कंठ से ईश्वर का धन्यवाद किया। पत्नी के पास पहुँचा, उनका आवेश और आवेश कठोर वाणी के रूप में फूट पड़ा, "कहाँ रहे, एक घंटे तक, क्या सोचा नहीं, मुझ पर क्या गुजरी होगी। सामान छोड़ कर तुम्हें ढूँढने कहाँ जाती। अजनबी शहर में तुम्हारे बिना यहाँ मेरा कौन था ? यदि तुम्हें कुछ हो जाता तो ? अडोस – पड़ोस के यात्री भी सहानुभूति प्रकट कर रहे थे। वे आवेश में बड़बड़ाती रहीं और मैं वेदवाक्य मान कर सुनता रहा। पहली बार मुझे उनके आदेश और क्रोध पर दुःख नहीं हुआ, बल्कि प्रसन्नता ही हुई कि ईश्वर ने मेरी प्रार्थना सुन ली।

अधूरी प्रसन्नता – अभी मुझे अधूरी प्रसन्नता मिली थी, श्रीमती जी मिल गई थी पर पूरी प्रसन्नता तब मिलती, जब मोबाइल भी मिल जाता। श्रीमती जी को कैसे बताऊँ कि मोबाइल गुम हो गया है। मैंने भगवान से प्रार्थना की कि मुझे अधूरी नहीं, पूरी प्रसन्नता चाहिए। मैंने श्रीमती जी से धीरे से कहा– 'मेरा मोबाइल.......।' पर उन्होंने जवाब नहीं दिया। मैंने फिर पत्नी के सम्मुख छिंछियाते हुए कहा –'मेरा मोबाइल......।' तब श्रीमती जी उग्र होकर बोली "क्या मोबाइल, मोबाइल की रट लगाए हुए हो। क्या तुम्हें याद नहीं, टर्मिनल–1, में प्रवेश करते हुए सुरक्षा कर्मचारियों ने चैकिंग करते समय तुम्हारा मोबाइल, घड़ी और सारा सामान प्लास्टिक की टोकरी में रखवा दिया था। चैकिंग के बाद मैंने मोबाइल अपने पर्स में रख लिया था। सुन कर मैं उछल पड़ा। मैंने फिर ईश्वर का धन्यवाद किया। जिस मोबाइल को मैं खोया हुआ समझ रहा था, वह कब कैसे श्रीमती जी के पर्स में चला गया, यह मेरे लिए अचरज तथा ईश्वरीय कृपा का ही परिणाम था।

और अन्त में–विगत पचास–साठ वर्षों में मैंने अनेक आलेख, निबन्ध, नाटक, कविताएँ और कहानियाँ लिखी हैं लेकिन यह कहानी (आत्मकथा) मेरे खून–पसीने का निचोड़ है। मैंने गहन व्यथा को झेला है। मैं रोया हूँ और हँसा भी हूँ इसमें न तो कल्पना का सौन्दर्य है और न अलंकारों का माधुर्य। इसमें तो केवल, एक घंटे की गहन पीड़ा की अनुभूति है। मैं कुछ पल मृत्यु शैया की गोद में जिया हूँ। अब मैं अपनी यह आप बीती अपने सहृदय पाठकों में परोस रहा हूँ। अब यह आप पर निर्भर करता है कि आप इसे मेरा पागलपन कहेंगे या मौलिक आत्मानुभूति ?

इस आत्म कथा से भले ही मुझे और कोई उपलब्धि हुई हो या नहीं पर मेरा अटूट ईश्वर विश्वास बढ़ा है। मेरे तन से, मन से और प्रत्येक साँस से एक ही स्वर प्रस्फुटित होना है और वह है– **'ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे'।**

यदि यह मेरी आत्मकथा आपके हदय के तारों को अंकृत करने में सक्षम रही हो तो निम्नांकित मोबाइल नम्बर के माध्यम से मुझे मेरी पीड़ा के प्रति सहानुभूति के दो शब्द प्रकट कर कृतार्थ करें।

230, आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर, हरिद्वार
मो. 9639149995

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा।।
यजु. 19.39

दोष मुझमें ढेर होंगे;
देवजन, ज्ञानी तपस्वी झाड़ पोंछ पवित्र कर दें
मुझे; मेरी बुद्धि, मेरा मन तथा सब कर्म मेरे
शुद्ध और पवित्र होवें।
अग्नि, जल, आकाश, पृथ्वी,
वायु, जिनसे यह बना है देह मेरा, करें निर्मल!
और प्रभु सर्वज्ञ तुम भी कलुष सब मेरे हटा कर
मुझे पूर्ण पवित्र कर दो!

पत्र/कविता

पं. बिहारीलाल शास्त्री

पं. बिहारीलाल शास्त्री का जन्म फाल्गुन शुक्ला तृतीया सं. 1947 वि. को मुरादाबाद जिले के पागबड़ा ग्राम में हुआ। इनके पिता का नाम पं. अयोध्या प्रसाद था, जो भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण थे। परिवार में खेती तथा लेनदेन का काम होता था। बिहारलालजी का संस्कृत अध्ययन पं. लोकनारायण तथा उनके पुत्र पं. केदारलाल से हुआ। इनके निकट रहकर उन्होंने अमरकोश, लघु कौमुदी आदि ग्रन्थ पढ़े। प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् इन्हें सम्भल की संस्कृत पाठशाला के अध्यापक का कार्य मिला। पं. बंशीधर पाठक तथा पं. शिव शर्मा के सान्निध्य से ये आर्यसमाजी बने। कुछ समय तक मुरादाबाद के इस्लामिया स्कूल में शिक्षण कार्य किया। पुनः रतनपुर की जैन पाठशाला में भी शिक्षक रहे। जब पं. भोजदत्त शर्मा ने समाज में आर्य मुसाफिर विद्यालय की स्थापना की, तो बिहारीलाल जी वहाँ उपदेशक कक्षा को पढ़ाते रहे। 1920 से 1924 तक आर्य उपप्रतिनिधि सभा जिला बिजनौर के अन्तर्गत प्रचार कार्य किया।

कालान्तर में बरेली के सरस्वती विद्यालय में अध्यापन कार्य किया। अन्ततः जिला बदायूँ के उँझानी कस्बे में म्यूनीसिपल इण्टर कालेज में संस्कृत के प्रवक्ता पद पर कार्य करते हुए 1956 में अवकाश ग्रहण किया। पं. बिहारीलाल शास्त्री ने अपने जीवनकाल में विभिन्न मतानुयायी विद्वानों से अनेक शास्त्रार्थ किए, जिनमें आपको सदा विजय श्री प्राप्त होती रही। वे जीवन के अन्तिम वर्षों में बरेली में रहे। 3 जनवरी 1986 को इनका निधन हुआ।

लेखकीय कार्य—ऋग्वेद के दशम मण्डल का रहस्य, यजुर्वेद का रहस्य, साकार निराकार निर्णय, वेदवाणी (वेद विषयक निबन्धों का संग्रह), पशुबलि और वेद, योगिराज श्रीकृष्ण, इस्लाम का स्वरूप, चुने हुए फूल, धर्म तुला (1976), चार शास्त्रार्थ, वैदिक पताका, दम्भ दमन (2021 वि.), अंगद चरण, मूर्ति पूजा पर प्रामाणिक शास्त्रार्थ, क्या मूर्तिपूजा वेदोक्त है? (2020 वि.), सत्यार्थ प्रकाश का महत्व (2036 वि.), शिव का यथार्थ स्वरूप तथा गोस्वामी तुलसीदास ।

उपर्युक्त मौलिक ग्रन्थों के अतिरिक्त शास्त्री जी ने स्वामी दर्शनानन्द कृत वेदान्त दर्शन के उर्दू भाष्य (अपूर्ण) का हिन्दी अनुवाद किया। उनका चाणक्य नीति का भाषानुवाद तथा दृष्टान्त सागर भी प्रकाशित हुए हैं। पं. जगदीश विद्यार्थी जी के सम्पादन में सन् 1973 में पं. बिहारीलाल शास्त्री जी पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ भी प्रकाशित किया गया था।

1960 से मेस्टनरोड–कानपुर के आर्यसमाज–वार्षिकोत्सव में मुझे (गुरुकुलानन्द/ज्ञानप्रकाश मेडिकल छात्र को) कई बार पं. बिहारीलाल शास्त्री जी का चरण स्पर्श का सौभाग्य मिला था।

स्वामी गुरुकुलानन्द 'कच्चाहारी'
पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)
'इतिहास के बिखरे पन्ने' से साभार

****

बलिदानी गुरु और उनके शिष्य

देश–धर्म पर हो गए, देव गुरु कुरबान।
भारत मां की कर गए, जग में ऊंची शान।।
जग में ऊंची शान, धन्य थे वे बलिदानी।
दुनिया में कर गए, बहादुर अमर–कहानी।।
भारत के सब युवक–युवतियो, धर्म निभाओ।
देशभक्त बलवान बनो, शुभ कर्म कमाओ।।

सारे भारत देश में मुगलों का था ज़ोर।
करते थे पापी यहाँ, पाप रात–दिन घोर।।
पाप रात–दिन घोर, न ईश्वर से डरते थे।
निर्दोषों को दुष्ट ,कत्ल वृथा करते थे।।
ललनाओं की लाज, लूटते थे अन्यायी।
गऊओं पर तलबार, चलाते थे दुखदायी।।

तेग बहादुर सन्त ने, किया धर्म का काम।
दिल्ली में जाकर कहा, मुगलो सुनों तमाम।।
मुगलो सुनों तमाम, प्रभु है जग का स्वामी।
सब के माता–पिता, गुरु है सबका नामी।।
निर्दोषों का कत्ल कराना, धर्म नहीं है।
मानव हो कर पाप कमाना, धर्म नहीं है।।

पापी औरंगजेब ने, किया भयानक पाप।
तेग बहादुर संत को, दिया बड़ा सन्ताप।।
दिया बड़ा संताप, संत का सिर कटवाया।
भूल प्रभु को गया, दुष्ट ने पाप कमाया।।
तेग बहादुर का बेटा,गोविन्द रणबंका।
आया उसको जोश, बजाया रण लड़ ड़का ।।

गुरु गोविन्द ने देश के, किये इकट्ठे वीर।
हत्यारों को दो मिटा, कहा बनो रणधीर।।
कहा बनो रणधीर, जवानो जोश दिखाओ।
अपना प्यारादेश, बचाओ अब योद्धाओ।।
अपने चारों पुत्र, धर्म पर गुरु ने वारे।
नाम अमर कर गए,गुरु गोविन्द जी प्यारे।।

मुगलों से गोविन्द ने, किया घोर संग्राम।
महिमा गुरुगोविन्द की,गाता विश्व तमाम।।
गाता विश्व तमाम, गुरु गोविन्द की गाथा।
भारत मां का किया, जगत में ऊंचा माथा।
गुरु के शिष्यो ! खान, पान, पहराव सुधारो।
'नन्दलाल' शुभकर्म, करो, अब जागो प्यारो।।

पं. नन्दलाल निर्भय
आर्य सदन बहीन, जनपद पलवल 'हरियाणा'
मो. 9813845774,9728504364

धारणा लगते ही ध्यान लगाना संभव है

कुछ सज्जनों का कहना है कि सन्ध्या (ईश्वर भक्ति) करते समय ध्यान नहीं लगता। ध्यान क्यों नहीं लगता इसका कारण है कि धारणा दृढ़ नहीं है। ध्यान लगाने से पहले धारणा बनानी पड़ती है। यदि धारणा पक्की नहीं है तब ध्यान कभी नहीं लगेगा। ध्यान लगाने के लिए धारणा को अटूट बनना पड़ता हैं।

धारणा बनती है मन के द्वारा और मन है चंचल। फिर पहले मन को वश में करो। मन बुद्धि के अधीन है। यदि बुद्धि में ही मलिनता भरी हुई है तब मन मनमानी करने में स्वतंत्र हो जाता है। इन्द्रियों के बहकावे में आकर संयम खो देता है। धारणा धरी रह जाती है। फिर ध्यान लगाने का प्रश्न ही नहीं होता।

प्रिय बंधुओ! पहले बुद्धि को निर्मल करो! बुद्धि की निर्मलता के लिए शुद्ध सात्विक आहार ग्रहण करो! तामसिक भोजन से बचो जो बुद्धि भ्रष्ट करता है। विद्वानों का सत्संग करो! आर्य पुस्तकों का स्वाध्याय करो। मन को वश में करने के लिए प्राणायाम द्वारा अभ्यास करो। मन में धारणा बनाओ कि ईश्वर उपासना करनी आवश्यक है। धारणा लगते ही ध्यान लगाना संभव है। जैसे प्यासे व्यक्ति की धारणा पानी प्राप्त करने की ओर ध्यान लगा देती है ऐसे ही ईश्वर भक्ति बनाने से ध्यान लग जाता है।

देवराज आर्य मित्र
नई दिल्ली–64

☞ पृष्ठ 01 का शेष

महर्षि दयानन्द जन्म भूमि टंकारा में ...

प्रातः यज्ञशाला में यज्ञ आरम्भ हुआ। मुख्य यजमान के रूप में जस्टिस प्रीतमपाल, श्रीमती मायादेवी, श्री एस के शर्मा, श्री विपिन भाई वेलाणी सपत्नीक, श्री अरुण अब्रोल, डॉ. अविनाश भट्ट उपस्थित थे। आचार्य रामदेव जी के प्रवचन के बाद आचार्य वीरेन्द्र कुमार जी द्वारा सारगर्भित प्रवचन दिया गया। श्री विजय आनन्द (फिरोजपुर) ने भजनों की प्रस्तुति दी।

युवा सम्मेलन समारोह का आयोजन किया गया। जिसमें उपदेशक विद्यालय के ब्रहमचारियों द्वारा व्यायाम प्रदर्शन प्रस्तुत किये गए। सायं 5 बजे पुनः यज्ञ आरम्भ हुआ।

रात्रि 8 बजे श्री विजय आनन्द (फिरोजपुर) द्वारा ऋषि के प्रति संगीत भरी श्रद्धांजलि दी गई जिसकी अध्यक्षता मन्त्री श्री अजय सहगल जी ने की।

15.02.2026 प्रातः 9 बजे से मुख्य यज्ञशाला में यज्ञ किया गया जिसमें मुख्य यजमान जस्टिस प्रीतमपाल, श्रीमती मायादेवी रहे। यजुर्वेद पारायण यज्ञ की पूर्णाहुति प्रातः 10.00 बजे हुई।

तदुपरान्त जस्टिस प्रीतमपाल, श्रीमती मायादेवी सभी की शुभकामनाएं एवं आशीर्वाद ग्रहण करते हुए ध्वजस्थल पर पहुंचे। ट्रस्ट की ओर से एवं अन्य पधारे हुए प्रतिनिधियों एवं आर्य महानुभावों ने उन्हें फूलमाला अर्पित कर उनका स्वागत किया। जस्टिस प्रीतमपाल द्वारा ध्वजारोहण किया गया। इस अवसर पर श्री विजय आनन्द द्वारा ध्वजगीत गाया गया। तदुपरान्त जस्टिस प्रीतमपाल ने ओउम्

ध्वज दिखाकर शोभायात्रा का शुभारम्भ कराया जोकि टंकारा गाँव की गलियों में होते हुए पनः टंकारा परिसर में पहुंची।

डी.ए.वी. फिरोजपुर कैंट में महर्षि जयंती पर हुआ यज्ञ

डी.ए.वी. कॉलेज फॉर विमेन, फिरोजपुर कैंट में महर्षि दयानंद सरस्वती जी की जयंती के उपलक्ष्य में श्रद्धा और भक्ति भाव से हवन यज्ञ का आयोजन किया गया। वैदिक मंत्रोच्चारण के साथ सम्पन्न हुए इस कार्यक्रम ने पूरे परिसर को आध्यात्मिक वातावरण से भर दिया। कॉलेज की प्राचार्या डॉ. सीमा अरोड़ा सहित समस्त प्राध्यापकगण एवं छात्राओं ने हवन में आहुति डालकर विश्व शांति, समृद्धि एवं सर्वकल्याण की प्रार्थना की। इस अवसर पर महर्षि दयानंद सरस्वती जी के जीवन, उनके सिद्धांतों तथा समाज सुधार में उनके महत्वपूर्ण योगदान पर प्रकाश डाला गया। सत्य, धर्म, समानता और नैतिक मूल्यों को अपनाने का संदेश दिया गया।

इस अवसर पर प्राचार्या डॉ. सीमा अरोड़ा ने विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए महर्षि दयानंद सरस्वती जी के जीवन, उनके संघर्षों और उनकी दार्शनिक विचारधारा पर विशेष व्याख्यान भी प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि किस प्रकार महर्षि दयानंद ने समाज में फैली कुरीतियों का विरोध किया और शिक्षा व सत्य के मार्ग पर चलने का संदेश दिया। उन्होंने छात्राओं को उनके आदर्शों का अनुसरण करने तथा जीवन में उच्च नैतिक मूल्यों को अपनाने के लिए प्रेरित किया।

कार्यक्रम का समापन शांति पाठ के साथ हुआ।

डी.ए.वी. इंटरनैशनल स्कूल, अमृतसर में ऋषि जयन्ती

डी.ए.वी. इंटरनैशनल स्कूल अमृतसर में महर्षि दयानंद सरस्वती जी की पावन जयंती एवं ऋषि बोधोत्सव का आयोजन किया गया। प्रातः काल विद्यालय की यज्ञशाला में पावन हवन किया गया। जिसमें प्रिं. डॉ. अंजना गुप्ता, शिक्षक गण और विद्यार्थी उपस्थित थे। छात्र छात्राओं ने वैदिक भजनों का गायन भी किया गया।

प्रिं. डॉ. अंजना गुप्ता ने कहा कि वर्ष 1824 में जब महर्षि दयानंद सरस्वती जी का जन्म हुआ तो हमारा समाज अनेक कुरीतियों से ग्रस्त था। जातिवाद, छुआछूत, अंधविश्वास की जड़ें समाज में गहरी थीं। समाज और देश की प्रगति के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा थी। इस अंधकार में महर्षि दयानंद सरस्वती जी जन्म हुआ। स्वामी जी ने वेदों के वास्तविक भाष्य को दुनिया के सामने रखा और सबको वेद पढ़ने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने अपना समस्त जीवन मानव कल्याण, समाज सुधार, जीवन मूल्यों के उत्थान और देश के सम्मान के लिए समर्पित कर दिया। उनकी स्मृति में डी.ए.वी. शिक्षण संस्थाओं की नींव रखी गई। उनका जीवन हमारे लिए प्रेरणास्रोत है। उनके द्वारा बताए मार्ग पर चलना हर मनुष्य का परम कर्त्तव्य है।

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2026

डी.ए.वी. वसन्त विहार में नव सत्र पर कैम्ब्रिज विंग का शुभारम्भ हुआ

सूरज भान डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, वसंत विहार नवसत्र के नवआरंभ के शुभ अवसर पर विद्यालय के नवनिर्मित एवं उन्नत मुख्य द्वार व स्वागत कक्ष, पावन यज्ञशाला तथा कैम्ब्रिज विंग के औपचारिक शुभारंभ के साथ एक ऐतिहासिक उपलब्धि का साक्षी बना। यह कार्यक्रम परंपरा, संस्कारों और प्रगतिशील शिक्षा के सुंदर समन्वय का प्रतीक रहा।

इस पावन अवसर पर पद्मश्री डॉ. पूनम सूरी जी, माननीय अध्यक्ष, डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंध समिति, के साथ सुश्री मणि सूरी, डी.ए.वी. कॉलेज प्रबंध समिति के सम्मानित पदाधिकारी, आर्य समाज के प्रतिनिधि तथा विभिन्न डी.ए.वी. संस्थानों के सम्मानित प्रधानाचार्यगण उपस्थित रहे।

कार्यक्रम का शुभारंभ डी.ए.वी. गान से हुआ। माननीय अध्यक्ष डॉ. पूनम सूरी जी द्वारा विद्यालय की निरंतर प्रगति एवं उन्नति के लिए दिव्य आशीर्वचनों के साथ मंगलकामना की।

नवीन रूप से सुसज्जित स्वागत कक्ष एवं मुख्य प्रवेश द्वार अपनी आधुनिक संरचना और कार्यकुशलता के माध्यम से सभी आगंतुकों के लिए आकर्षण का केन्द्र बना।

प्राचार्या ने बताया कि वैदिक परंपराओं पर आधारित यज्ञशाला विद्यालय के आध्यात्मिक केंद्र के रूप में निर्मित है, जो विद्यार्थियों में संस्कार, अनुशासन तथा आत्मिक विकास को प्रोत्साहित करेगी।

नवआरंभ का एक प्रमुख आकर्षण कैम्ब्रिज पाठ्यक्रम विंग रहा, जो विद्यालय की वैश्विक मानकों के अनुरूप शिक्षा, आलोचनात्मक चिंतन तथा सर्वांगीण विकास के प्रति प्रतिबद्धता को दर्शाता है, साथ ही भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों से गहराई से जुड़ा हुआ है।

डॉ. पूनम सूरी जी ने विद्यालय की प्रधानाचार्या के दूरदर्शी नेतृत्व की सराहना की तथा उनकी सोच को प्रशंसनीय बताया। उन्होंने विद्यालय परिवार को सक्षम नागरिकों के निर्माण हेतु निरंतर प्रयासरत रहने के लिए प्रेरित किया।

पाँच सूत्रीय मांगों के साथ संपन्न हुआ तीन दिवसीय आर्य महासम्मेलन

'आगरा। आर्य समाज केवल धार्मिक संगठन नहीं, बल्कि सामाजिक जागरण का आंदोलन है। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य

और परोपकार ही आर्य जीवन की पहचान है। समाज में फैली सामाजिक बुराइयाँ–जैसे दहेज प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या, नशाखोरी और दिखावाद्य समाज को भीतर से खोखला कर रही हैं। आर्य समाज इन कुरीतियों के विरुद्ध निरंतर संघर्ष करता रहा है और आगे भी करता रहेगा।" ये उद्‌गार कमला नगर स्थित जनक पार्क में आर्य केंद्रीय सभा की ओर से आयोजित आर्य महासम्मेलन में समापन के अवसर पर मंदिर मथुरा के अधिष्ठाता आचार्य स्वदेश' ने व्यक्त किए। उन्होंने युवाओं से आह्वान किया कि वे वेदाध्ययन, स्वाध्याय और चरित्र निर्माण को जीवन का लक्ष्य बनाएं।

तीन दिवसीय महासम्मेलन में अजमेर, देहरादून, प्रयागराज, चंडीगढ़ और आगरा मण्डल सहित लगभग पाँच हजार से अधिक आर्यजनों ने भाग लिया। सम्मेलन में विद्वानों ने सरकार से जातिवाद मिटाने, नशा मुक्ति, अंधविश्वास, गौ हत्या, समान शिक्षा के लिए कानून बनाने के लिए पाँच सूत्रीय माँग उठाई गई।

सम्मेलन की शुरुआत सुबह योग, प्राणायाम, यज्ञ एवं ध्यान साधना से हुई। भजनोपदेशक पंडित कुलदीप आर्य द्वारा महर्षि दयानंद आर्य समाज और वैदिक धर्म के भजनों द्वारा श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया।

आर्यसमाज (अनारकली) मन्दिर मार्ग से सत्संग का विवरण

आर्यसमाज (अनारकली) मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली का साप्ताहिक सत्संग हर रविवार को प्रातः 9 बजे से 11 बजे तक उत्साह के साथ सम्पन्न होता है।

जनवरी में डी.ए.वी. स्कूल

सैक्टर–14 फरीदाबाद, डी.ए.वी. स्कूल सैक्टर–37 फरीदाबाद, डी.ए.वी. स्कूल सैक्टर–49 फरीदाबाद, डी.ए.वी. स्कूल NH–3 NIT फरीदाबाद ने सत्संग में भाग लिया। जिसमें क्रमशः श्रीमती पिंकी भारद्वाज ने 'भारतीय व पाश्चात्य नववर्ष में अन्तर' श्री बालदेव शास्त्री ने 'लोहडी व मकर संक्रान्ति का महत्व', प्रो. कृष्णा शर्मा ने 'महर्षि दयानन्द एवं वैदिक प्रार्थना' श्री बिजेन्द्र शास्त्री ने 'वसन्त पंचमी गणतन्त्र दिवस एवं लाला लाजपत राय का जीवन' विषय पर अपने विचार रखे। श्री पदम सिंह आर्य का कविता पाठ हुआ। देव यज्ञ, ब्रह्मयज्ञ एवं योगध्यान आर्यसमाज (आनरकली) के धर्माचार्य पं. धनश्याम आर्य सम्पन्न करवाये। सत्संग में हर रविवार को आर्य सत्संग प्रेमियों की अच्छी उपस्थिति रहती है। आर्यसमाज के कार्यकारी प्रधान श्री अजय सूरी, मन्त्री श्री अशोक कुमार अदलखा जी के अतिरिक्त अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित रहते हैं।

सत्संग के पश्चात् शान्ति पाठ व प्रसाद वितरण किया जाता है।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**